THE

MAHABHARAT

OF

MAHARSHI VEDA-VYASA

Translated

INTO

HINDI PROSE.

PUBLISHED BY

SARAT CHANDRA SOM,

117/1, BOW BAZAR STREET, CALCUTTA.

(SECOND EDITION)

1907.

महाभारत

आदि, सभा, वन, विराट, उद्योगपर्व्व,

(और सूचीपत्र)

समाप्त ।

महर्षि कृष्णद्वैपायन वेदव्यास-कृत मूल संस्कृतसे

योग्य पण्डितोंके द्वारा

अनुवादित

और

११७।१ बहुबाजार ष्ट्रीट, कलकत्ते से

श्री शरच्चन्द्र सोमके द्वारा

प्रकाशित ।

द्वितीय संस्करण ।

VOL. I.

कलकत्ता ;

श्री माणिकचन्द्र चक्रवर्त्तोंके द्वारा

११७।१ बहुबाजार ष्ट्रीट,—कलेज मेशिन प्रेससे मुद्रित ।

आदिपर्व्व ।

...द्दा हो, तो महाभारतका आदर क्यों
प्राप्त करनेकी आशा मैंने कभी नहीं की थी ; इस अमूल्य ग्रन्थका
हो कई मित्रोंके अनुरोधसे मैं इस कार्य्यमें दत्तचित्त हुआ था सो इस समय
चित आदर होना ही मेरे लिये यथेष्ट है। यद्यपि अभीतक हिन्दी भाषाप
उचित आदर देखनेमें नहीं आता है, तथा धर्म्म पर भी आशानुरूप श्रद्धा न
तौभी मैं ऐसे सुसमयका आना निश्चय समझता हूं, कि हिन्दी भाषा लोगोंपर
जमावे और धर्म्मपर लोग भक्ति दिखाने लगें, उस समय अवश्य ही लोग इस अमू
मूल्य समझने लगेंगे। जब बंगदेशमें महाभारतका बंगानुवाद दो लाखसे भी अधिक
है, हिन्दू भूमिके अन्य प्रान्तोंमें वह सुन्दर फल क्यों न होगा ?

इस महाभारत ग्रन्थके प्रकाशमें मेरे मित्र और नामी व्यवसायी घोष सिंह कम्पन
धनकी सहायता देकर बड़ा ही उपकृत किया है और बङ्गवासीके अधिकारी तथा हिन्
सीके सम्पादक एवं सहकारी सम्पादक महोदय लोग मेरे विशेष धन्यवादपात्र हैं।
सबोंने समय समय-पर मेरी बहुत कुछ सहायता की है। भगवान इन सब सज्ज
करें। मेरा अन्तिम धन्यवाद अनुवादक महाशयोंको है। सुभसे परिश्रमका मूल्य
उन्होंने महाभारतको विशुद्ध बनानेके लिये बहुत कुछ यत्न चेष्टा की है।

महाभारतका मूल्य यथा सम्भव थोड़ा किया गया। राजा महाराजा जमीन्
५१) रुपया और विद्यार्थी तथा साधारण गृहस्थोंके लिये महाभारत जैसे ग्रन्थके लि
बहुत नहीं है।

१ नं० चीनाबाजार लेन
हमाम गली, कलकत्ता
१७ई जून १८६५ खी:।

शरचन्द्र

भूमिका

दूसरा संस्करण।

पहिला संस्करणमें जो था, वही सम्पूर्ण विषय इस दूसरा संस्करणमें है। इ
प्रत्येक हिन्दूको अवश्य करके पढ़ना चाहिये ; इसलिये सम्प्रति सुलभ मूल्यमें इ
प्रकाशित हुआ है। यह दूसरा संस्करण सम्पूर्ण हिन्दी महाभारतका मूल्य १

११७।१ बहूबाजार ष्ट्रीट
कलकत्ता।
१५ई अप्रेल सन् १९०७

शरचन्

भूमिका।

वानकी अनन्त कृपासे आज महाभारत ग्रन्थ सम्पूर्ण हुआ। चार वर्ष पहिले
बीड़ा उठाया था। उस समय ऐसी आशा नहीं थी, कि मैं इतना शीघ्र इस
यकारी अपार ग्रन्थ-समुद्रके पार उतर सकूंगा। इस चार वर्षमें मुझे यह ज्ञान
हिन्दुओंकी दशा बड़ी शोचनीय हो गई है, क्यों कि वे अपने जीवनके प्रधान
होनेका लक्षण दिखा रहे हैं। भारतवर्ष एक समय जिस धर्मके प्रभावसे जगत्का
गिना जाता था, आज उसी धर्मका ह्रास हो रहा है। धर्म घटनेके साथ साथ भार-
अधोगति हो रही है, उससे उद्धार पानेके लिये धर्मके अतिरिक्त कोई आश्रय नहीं है।

यह समय भारत अत्याचारी मुसल्मान नरेशोंकी अधीनतासे मुक्त होकर हृदयवान
ोंके सुशासनका सुख मना रहा है; ऐसे सुअवसरमें तन मन धनसे धर्म-वृद्धिकी
ी उन्नति कर लेना हिन्दू मात्रका कर्त्तव्य है। हिन्दू सन्तानसे महाभारतके
करनेका प्रयोजन नहीं है। क्यों कि हिन्दू मात्र जानते हैं, कि महाभारतका
म वेद है; मनुष्योंके जानने योग्य विषयोंमें ऐसी एक भी बात नहीं है, जो महा-
ो गई हो। संसारीके लिये महाभारतको भांति कोई भी अति प्रयोजनीय ग्रन्थ
है। पर कालकी विचित्र प्रभावसे विलायती शिक्षा पाकर देशका जिस प्रकार
ा है, वह सुननेसे भी रुलाई आती है। अनेक हिन्दू सन्तान अब महाभारतके
भूलसी गई है। इस निराशामें आशा केवल इतनी ही है, कि इस कुशिक्षित
भारतकी कथा उनके कर्ण-गोचर होनेसे उनके मनमें चुभती हैं। एक अङ्गरेजी-
मेरे प्रकाशित महाभारतके एक ग्राहक महाशयके यहां बैठकर दो घड़ी महा-
लिया था। इससे मोहित होकर उन्होंने अङ्गरेजीमें मुझे लिख भेजा था
महाभारतका कुछ अंश सुनकर आज मेरी ज्ञान चक्षुका अन्धकार दूर हुआ।
अङ्गरेजी पढ़ता हुआ मोहकी मैलेसे मेरा मन आच्छादित था। मुझे एकबार
ा, कि महाभारत ऐसा अमूल्य रत्न है, इसमें इतने सारगर्भ विषय प्रविष्ट हैं।
मैं कभी न भूलूंगा। इसमें सन्देह नहीं है, कि आप सर्व्व साधारणको समझने
हिन्दी भाषामें महाभारत प्रकाशित कर भारतवासियोंके धन्यवाद पात्र बने हैं।
डर द्वारा छब्बीस रुपया भेजता हूं, अनुग्रह पूर्व्वक मुझे ग्राहक बनाकर मह
स पत्रके पढ़नेसे मेरे मनमें आनन्दकी लहर उछलने लगी। मानो सम्पूर्ण व्यय,
ाका फल हाथ आगया।

ये बङ्ग भाषामें महाभारत प्रकाश कर स्वर्गवासी कालीप्रसन्न सिंहने अपनी
दी थी; यह भी सुना जाता है, कि वर्द्धमानके महाराजने भी महाभारतके
ख रुपये खर्च कर दिये थे। ऐसी ऐसी धनियोंके सम्बन्धमें जब ऐसी प्रसिद्धि
ुष्यके लिये इस महाकार्य्यसे उद्धार होना सामान्य सौभाग्यकी बात नहीं
क बड़े बड़े हिन्दू राजा महाराजा जमीन्दार रईस विद्यमान हैं; यदि

सभापर्व्वका सूचीपत्र।

बनपर्व्वका सूचीपत्र।

विराटपर्व्वका सूचीपत्र।

उद्योगपर्व्वका सूचीपत्र।

भीष्मपर्व्वका सूचीपत्र।

आदि, सभा, वन, बिराट, उद्योग, भीष्म इत्यादि पर्व्वोंकी सूचीपत्र सम्पूर्ण।

सूचीपत्र।

द्रोणपर्व्व।

कर्णपर्व्वका सूचीपत्र ।

शल्यपर्व्वका सूचीपत्र।

सौप्तिकपर्व्वका सूचीपत्र।

स्त्रीपर्व्वका सूचीपत्र।

शान्तिपर्व्वका सूचीपत्र।

द्रोण, कर्ण, शल्य, सौप्तिक, स्त्री, शान्ति पर्व्वोंकी सूचीपत्र सम्पूर्ण ।

सूचीपत्र ।

अनुशासनपर्व्व ।

अश्वमेधपर्व्वका सूचीपत्र।

आश्रमवासिक पर्व्वका सूचीपत्र।

मौषल पर्व्वका सूचीपत्र।

महाप्रस्थानिक पर्व्वका सूचीपत्र।

स्वर्गारोहणपर्व्वका सूचीपत्र ।

अनुशासन, अश्वमेध, आश्रमवासिक, मौषल, महाप्रस्थानिक, स्वर्गारोहणपर्व्वोंकी सूचीपत्र सम्पूर्ण

सूचीपत्र समाप्त ।

महाभारत।

आदिपर्व्व।

नारायण नरोत्तम नर और देवी सरस्वती जी को प्रणाम करके जय कीर्त्तन करना चाहिये।

एक समय लोमहर्षण-पुत्र, सूतकुलके-आनन्द-दायी, सूतवंशी, पौराणिक श्री उग्रश्रवा जी महाराज विनयपूर्व्वक सिर नायकर नैमिषारण्य में कुल-के-स्वामी श्री शौनकजी के द्वादश- वार्षिकी-यज्ञ में दीक्षित और परम सुखसे बैठे हुए बड़े बड़े ऋषियों के पास जा पहुंचे। श्रीउग्रश्रवा जी के नैमिषारण्य में टिके हुए ऋषियों के आश्रम में पहुंचने पर, तपस्वी लोग आश्चर्य कथा सुनने के लिये वहां आकर उनको चारों ओर घेर बैठे। सूत-पुत्रने उन सब मुनि और तपस्वियों को प्रणाम-दण्डवत करके दोनों हाथ जोड़ कर तपोवृद्धिका समाचार पूछा। उन साधुओंने भी उनका उचित सत्कार किया। आगे उन सब तपस्वियों के बैठने के पश्चात् श्री लोमहर्षणपुत्र जी नम्र-भावसे अपनेलिये ठहराये-हुए आसन पर जा विराजे। उनको सुख-से बैठे-हुए और स्वस्थचित्त देखकर किसी ऋषिने बातही बात में पूछा, कि हे पद्म-पत्राक्ष सूतपुत्र! कहिये तो सही, इस समय आपका आना कहां से हुआ और अबतक आप कहां विराजते थे। यह पूछे जाने पर, वाक-निपुण श्री उग्रश्रवा जी महाराज शुद्ध-आत्मा-युक्त मुनियों की उस बड़ी सभामें अच्छी और सच्ची रीति पर उनलोगों के चरित्रानुरूप वचन कहने लगे।

सूतपुत्र बोले, कि हे चिरञ्जीव महर्षियो! महानुभाव-राजर्षि जनमेजय के सर्प-यज्ञ में श्री वैशम्पायन मुनिने पृथ्वीनाथ परीक्षितपुत्र को श्रीवेदव्यास जी महाराज की कही हुई जो भांति भांति की मनोहर पुण्यकथा विधि-पूर्व्वक सुनाई थीं, मैं उन सब अपूर्व्व अर्थों से भरी हुई महाभारतीय कथाओं को सुनलेने के पश्चात् नाना तीर्थ और अनेक देशों में घूम घाम कर उस समन्तपञ्चक नामक पवित्र स्थान में होता हुआ, जिसकी सेवा ब्राह्मण लोग करते हैं और जहां पहिले कौरव, पाण्डव और दूसरे सब राजाओं में लड़ाई हुई थी, इस आश्रम में आपलोगों की भेंटके लिये आयाहूं। हे सूर्य्य-और अग्निके समान तेजोमय पुण्यवन्त द्विजो! जान पड़ता है, कि आप लोग इस यज्ञमें अभिषिक्त हुए हैं और नहा-धोकर शुचि हो करके जप-हवन से निश्चिन्त होकर आसनों पर सुख से बैठे हैं; क्या मैं इसी समय पुराणों की धर्म्मार्थयुक्त पवित्र-कथा और महानुभाव नरेशों और ऋषियोंका इतिहास सुनाऊं?

ऋषियों ने कहा, कि महर्षि द्वैपायन जी पुराण कह गये हैं, जिसको सुनकर देवता और ब्रह्मर्षियों ने बड़ी प्रशंसा की है, श्री वेदव्यास जी की आज्ञा से वैशम्पायन मुनिने सर्प-यज्ञके काल में जिस उपाख्यानों में श्रेष्ठ, विचित्र-पद-औ-पर्व्वयुक्त, सूक्ष्मार्थ प्रतिपादक, युक्तिपूर्ण, वेदार्थ से सुशोभित इतिहास-पर बने हुए महाभारत की अर्थभरी, अनेक शास्त्रोंके आशयोंकी, पवित्र, संस्कृत कथा महाराज जनमेजय की विधिके अनुसार आनन्द पूर्व्वक सुनाई थी, हमलोग आश्चर्य्य-कार्य्यकारी श्री महाराज वेदव्यास जी की रची हुई उस चारों वेदार्थसिद्धकारी पापभय-हारी, पुण्यभरी संहिता को सुना चाहते हैं।

श्री उग्रश्रवा जी बोले, कि उस हरि की, जो विश्व का आदि पुरुष औ ईश्वर है; जिसका नाम लेकर बहुत लोग हवन और स्तुति करते हैं; जो अद्वितीय, सत्य, विकार-रहित, व्यक्त, अव्यक्त, सनातन औ ब्रह्मरूपी है; जिसका रचा हुआ विश्व असत्, सदसत् और सदसत् से भिन्न है; जिसने सब स्थूल और सूक्ष्म वस्तु रची हैं; जो परम पुराण, अविनाशी, मङ्गल का देनेवाला औ मङ्गलरूप है; जो विश्वभर में व्याप्त, विश्व भरका उपासना-योग्य, दोषरहित, शुद्धस्वभाव, इन्द्रियोंका अधीश और चराचरके गुरु हरिको प्रणाम करके सबलोकों के पूजनीय, महानुभाव और आश्चर्य्यकार्य्यकारी श्रीमहाराज वेदव्यासजी का पवित्रमत प्रकाश करना प्रारम्भ करता हूं।

किसी किसी कविने भूमण्डल में पहिले भी इस इतिहास को कहा है, अब भी कोई कोई कहते हैं और आगे भी बहुतेरे कहेंगे। अनन्त ज्ञान का देनेवाला यह इतिहास तीनों लोक में प्रशंसित हुआ है, ब्राह्मण लोग इसको संक्षेप में और विस्तारपूर्व्वक धारण किये हुए हैं। यह महाभारतग्रन्थ अनेक भांति के छन्द अच्छे अच्छे शब्द और देवता तथा ब्राह्मणों की सधी हुई शब्दरूपी-शक्ति से सुशोभित हुआ है और पण्डितलोग इसका बड़ा आदर करते हैं।

यह जगत्, दशों ओर घोर अंधेरे से घेरा हुआ और उजाला औ ज्योति से बिलकुल खाली था। सृष्टि की आदि में जीवों की उत्पत्ति का अविनाशी बीज-रूपी एक बड़ा अण्डा उत्पन्न हुआ; पण्डित लोग उसीको महान औ दिव्य कहा करते हैं। सुना जाता है, कि वह परब्रह्म जो अद्भुत, अव्यक्त चिन्तातीत और सब ठौर तुल्यभाव है, उस अण्डे में सूक्ष्मकारण रूप से प्रवेश कर गया था। उससे सब लोकों के पितामह, अद्वितीय प्रभु, प्रजापति ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र उपजे। आगे स्वायम्भुव मनु, वसिष्ठ, परमेष्ठी, दश प्रचेता, दक्ष, दक्षके सातपुत्र—इन इक्कीस प्रजापतिओंने जन्म लिया। वह विराट् पुरुष जिनको ऋषिलोग योगवल से देखते हैं औ विश्वदेवगण—बारह सूर्य्य, आठ वसु, दो अश्विनीकुमार, यक्षलोग, साध्यलोग, पिशाचलोग, गुह्यकलोग और पितरलोग उत्पन्न हुए। सब गुणों से सुशोभित, विद्वान्, शान्त-चित्त, ब्रह्मर्षि और राजर्षियों ने जन्म लिया। और क्रम के अनुसार जल, पृथ्वी, वायु, आकाश, दिशा, वर्ष, ऋतु, मास, पक्ष, दिन, रात्रि और सब दूसरे लौकिक पदार्थ रचे गये।

स्थावर औ जङ्गम-आत्मक यह दृश्यमान जगत् प्रलयकाल में फिर लोप हो जायगा। जैसे वसन्त आदि हर ऋतु में ऋतुओं के चिह्न-प्रकट-करनेवाले फूल-आदि फूल कर, दिन पूरे होने पर, फिर गायब होते हैं, तैसेही युगके आरम्भ में सब पदार्थ रचे जाकर प्रलय-काल में फिर लय हो जाते हैं। इसी भांति रचने और नाश करनेवाला अनादि, अनन्त संसारचक्र सदा बदलता रहता है।

तेंतीस सहस्र, तेंतीस सौ, तेंतीस देवता संक्षेप में रचे गये। व्रहद्भानु, चक्षु, आत्मा, बिभावसु, सविता, ऋचीक, अर्क, भानु, आशावह, रवि, विवस्वान्, मह्य—यह सब अदिति के पुत्र हुए। इनमें मह्य सबसे छोटे, उनके पुत्र देवभ्राट और देवभ्राट के पुत्र सुभ्राट हुए; सुभ्राट के बड़े पण्डित और अनेक पुत्रों के जन्म-दाता दशज्योतिः, शतज्योतिः और सहस्र-ज्योतिः नामक तीन पुत्र हुए। महानुभाव दशज्योतिः के दशसहस्र, शतज्योतिः के एक-लक्ष और सहस्रज्योतिःके दश-लक्ष पुत्र उत्पन्न हुए; उन्हीं लोगोंसे कुरुवंश, यदुवंश, ययाति-वंश, इच्चाकुवंश और दूसरे अनेक राजर्षि-वंश उपजे औ वे सब उपजे-हुए वंश इसकाल में बहुत फैल गये हैं।

दुर्ग, नगर, तीर्थ-क्षेत्र आदि सब जीव-स्थान, धर्म्म-के-रहस्य, अर्थके रहस्य, काम-के-रहस्य चारों वेद, योग-शास्त्र, विज्ञान-शास्त्र, धर्म्म-अर्थ-काम-मोक्ष औ धर्म्म, अर्थ और काम सम्बन्धी अनेक शास्त्र, आयुर्व्वेद, धनुर्व्वेद इत्यादि संसार-निर्व्वाह करने के सब शास्त्रों को श्री महाराज वेदव्यास ऋषि जानते थे। वह सब विषय, व्याख्या-सहित सब इतिहास और अनेक भांति की श्रुति, इस ग्रन्थमें कही हैं; सो वही सब विषय इस ग्रन्थ के लक्षण हैं।

कोई कोई पण्डित इसको संक्षेप में जानना चाहते हैं और कोई कोई विस्तार-पूर्व्वक जानना चाहते हैं; इसलिये श्रीमहाराज वेद-व्यास जी ने इसे संक्षेपमें और विस्तारपूर्व्वक कहा है। भिन्न भिन्न पण्डित भिन्न भिन्न स्थानसे इस संहिताका आरम्भ समझते हैं; कोई कोई तो "नारायणं नमस्कृत्य" इस मन्त्र से, कोई कोई आस्तीकपर्व्वसे और कोई कोई राजा उपरिचर की कथासे इसका आरम्भ समझकर पढ़ने लगते हैं। पण्डित लोग अनेक उपायों से इस संहिता का ज्ञान उभाड़ते हैं। उनमें कोई कोई तो इसकी सुन्दर व्याख्या करते हैं और दूसरे इसका अर्थ भली-रीति समझने की शक्ति रखते हैं।

सत्यवतीपुत्र विद्वान ब्रह्मर्षि पाराशरि, अपनी तपस्या और ब्रह्मचर्य्य के प्रभावसे सना-तन वेद का विभाग कर इस पवित्र इतिहास को रच गये हैं। वह शक्ति-पूर्ण द्वैपायन सोचने लगे, कि इस श्रेष्ठतम इतिहास-ग्रन्थ की रचना के पश्चात् मैं इसे क्योंकर शिष्यों को पढ़ा सकूंगा। ऋषि द्वैपायन जीको ऐसी चिन्ता करते हुए जानकर सर्व्वलोकों के गुरु-देव भगवान ब्रह्मा जी श्रीमहाराज व्यास जी के सन्तोष के निमित्त और लोकों के हित करनेकी इच्छा से उस स्थानमें स्वयं उपस्थित हुए। उन्हे देखतेही वेदव्यासजीने समस्त मुनियों के सहित अचम्भे में होकर उनको प्रणाम-दण्डवत किया और बैठने को श्रेष्ठ आसन दिया। हिरण्यगर्भ के, उस आसन में बैठने पर, सत्यवती-पुत्र उनके समीप दोनों हाथ जोड़ कर खड़े रहे। अनन्तर कृष्ण-द्वैपायनजी परमेष्ठी की आज्ञा पाकर प्रसन्न-नेत्र और आनन्द-भरे मुख से उनके आसन के निकट बैठ गये। कुछ काल पीछे अति तेजस्वी व्यासजी ब्रह्माजीसे कहने लगे, कि हे भगवन्! मैंने एक ऐसा परम पवित्र काव्य रचने की कल्पना की है, जिसमें वेद के गूढ़तत्त्व; वेद-वेदाङ्ग और उपनिषद की व्याख्या; पुराण और इतिहास का प्रकाश; भूत, भविष्यत और वर्त्तमान—इन तीनों का निरूपण; बुढ़ापा, मृत्यु, भय, व्याधि, भाव और अभावका निर्णय; विविध धर्म्म और आश्रम के लक्षण; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—इन चारों वर्णों के लिये नाना पुराणों में कथित आचार, विधि, तपस्या और ब्रह्मचर्य्य; पृथिवी, चन्द्रमा, सूर्य्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा और चारों युग के प्रमाण; ऋग्वेद, यजुर्व्वेद, सामवेद और आत्मतत्त्व के

निरूपण; न्याय, शिक्षा, चिकित्सा, दानधर्म्म, पाशुपतधर्म्म और उनका वृत्तान्त कि जिन जिनने जिस जिस कारण से दिव्य वा मानव-योनिमें जन्म लिया है; पवित्र तीर्थ, देश, नदी, वन, पर्व्वत, समुद्र, दिव्यपुरी, व्यूह रचने के नियमादि युद्ध-कौशल, विशेष विशेष वाक्य, विशेष विशेष जाति, लोकयात्रा के विधान कथित होंगे और इनसबों के उपरान्त वह परब्रह्म, जो सम्पूर्ण संसार में व्याप्त है, सिद्ध किया जावेगा; पर इस भूमण्डल में इसे लिख सके, ऐसा कोई योग्य लेखक नहीं है।

ब्रह्माजी बोले, तुममें रहस्यों का ज्ञान रहने के कारण तुम बड़े कठोर तप करने वाले, कुल-शील से सुशोभित और सब ऋषियों से श्रेष्ठ हो। मैं जानता हूं, कि तुम जन्मके समयसे सत्य और ब्रह्म-सम्बन्धी वाक्य ही कहा करते हो, सो जब तुमने स्वरचित ग्रन्थ को काव्य करके निर्णय किया है, तब वह काव्य ही करके प्रसिद्ध होगा; जैसे सब आश्रमोंमें गृहस्थाश्रम सर्व्व-प्रधान है, तैसेही सब काव्यों में तुम्हारा यह काव्य सर्व्व-श्रेष्ठ होगा; कोई भी कवि इससे बढ़कर सुन्दर काव्य रच नहीं सकेगा। इस समय तुम गणेश जी को स्मरण करो, वही तुम्हारे इस काव्यके लेखक होंगे।

श्री उग्रश्रवा जी बोले, कि ऐसा कह कर ब्रह्माजी के अपने स्थान को चले जाने पर सत्य-वती-पुत्र श्री महाराज व्यासजी ने हेरम्ब को स्मरण किया। भक्तों की इच्छा भरनेवाले विघ्न-नाशी गणनायक को स्मरण करते ही वह वहां आ पहुंचे। वेदव्यास जी से पूजे जाकर उनके आसन में बिराजने पर, श्री महाराज व्यास जी बोले, हे अनघ गणनायक! मैं बोले जाता हूं, आप मेरे मानस-सङ्कल्पित महाभारत ग्रन्थके लेखक होवें। यह सुनकर गणपति जी बोले कि लिखना आरम्भ करने पर, यदि मेरी लेखनी क्षणमात्र भी न रुके, तो मैं लेखक हो सकता हूं। श्री व्यास जी बोले, कि आप भी किसी स्थान का अर्थ बिना समझे न लिखिये। गणनायक जी तथास्तु कहके लेखक के कार्य्यमें नियुक्त हुए। व्यास जी इसी से कौतूहलवश होकर बीच बीच में ग्रन्थग्रन्थि अर्थात् समझने में अति कठोर श्लोक रचे हैं और इसी प्रतिज्ञा के अनुसार इस महाभारत में ऐसे गूढ़ार्थयुक्त आठ सहस्र, आठसौ श्लोक हैं, जिनके सत्य अर्थ मैं जानताहूं, श्री शुकदेव जी भी जानते हैं और इसमें सन्देह है, कि सञ्जय जानता है वा नहीं। शिष्यों के निकट उन सब गूढ़ार्थ-युक्त व्यास कूटों के बड़े बड़े कूट अर्थों की व्याख्या कोई नहीं कर सकता। उन श्लोकों के लिखने के समय श्रीगणपति जी सब विषयों के जानकार होने पर भी, अर्थ समझने के लिये क्षणकाल सोचा करते थे और उस अवसर में श्री व्यासदेव दूसरे अनेक श्लोक रच डालते थे।

महाभारत-रूपी-सूर्य्य ने मानवों का अंधेरा हर लिया है; यह पुराणरूपी-पूर्णचन्द्रमा श्रुति-रूपी-ज्योत्स्ना को प्रकट कर मनुष्य-बुद्धि-रूपी-कुमुदवन को प्रकाश कर रहा है; इस इतिहास-रूपी-दीपकने मोह रूपी अंधेरेको हरकर सम्पूर्ण भुवनरूपी गृहमें उजाला भर दिया है। बादल जैसे प्रजाओं का आश्रय है, तैसेही यह महाभारत-रूपी-अविनाशी-वृक्ष सब बड़े बड़े कवियों का आश्रय होगा। भारत-वृक्ष का संग्रह-अध्याय उसके बीजरूपी, पौलोम और आस्तीकपर्व्व जड़रूपी, सम्भवपर्व्व गुद्दे रूपी, सभा और वनपर्व्व पक्षियों के घोंसले-रूपी, अरणीपर्व्व पर्व्वरूपी, विराट और उद्योगपर्व्व साररूपी, भीष्मपर्व्व बड़ी शाखारूपी, द्रोणपर्व्व पत्ररूपी, कर्णपर्व्व सुफेद फूलरूपी, शल्यपर्व्व गन्धरूपी, स्त्रीपर्व्व और ऐषिकपर्व्व छायारूपी, शान्तिपर्व्व महाफल-रूपी, अश्वमेधपर्व्व अमृत-

रस-रूपी, आश्रमवासिकपर्व्व आधार-रूपी, और मौषलपर्व्व बड़ी बड़ी शाखाओंके अन्त-भाग-रूपी हुए हैं। शान्तचित द्विजलोग उस महाभारत-रूपी वृक्ष की शरण लेते हैं और मैं भी उसी वृक्ष के स्वादिष्ट और देवदुर्लभ पवित्र रस-भरे नित्यधर्म्मरूपी-फूल और मोक्षरूपी-फल को कथा कहूंगा।

पूर्व्व कालमें बड़े वीर्य्यवन्त, धर्म्मात्मा कृष्ण-द्वैपायन जीने अपनी माता और प्रज्ञा-शील भीष्मदेव के नियोगसे विचित्रवीर्य्य के क्षेत्र में तीनों अग्नि के समान तेजस्वी तीन पुत्र उपजाये थे। वेदव्यास जी महाराज इस प्रकार से धृतराष्ट्र, पाण्डु, और विदुर—इन तीन सन्तानों का जन्म देकर तपस्या के लिये फिर आश्रम को गये। आगे उन पुत्रों के वृद्ध होकर परलोक सिधारने पर, वेदव्यास जी ने मनुष्यलोक में महाभारत को प्रकट किया। अनन्तर जनमेजय के सर्प यज्ञके समय में सहस्रों ब्राह्मण और स्वयं जनमेजय के, बड़ी चाहके साथ महाभारत सुनने की इच्छा दिखाने पर, श्री वेदव्यासजीने शिष्यों-के-सहित पासहीमें बैठे-हुए श्री वैशम्पानजी को ग्रन्थ सुनाने की आज्ञा दी। नित्य यज्ञके कर्म्म पूरे होने के पीछे वैशम्पायन मुनि वार वार पूछे जाकर सभा में सभ्यों के साथ बैठ कर महाभारत सुनाने लगे। भगवान् द्वैपायन ऋषिने इस महाभारत ग्रन्थमें कुरुवंशका विस्तार, गान्धारी की धर्म्मशीलता, विदुर की प्रज्ञा, कुन्तीका धैर्य्य, श्रीकृष्णका माहात्म्य, पाण्डवों की सत्यनिष्ठा और धृतराष्ट्र पुत्रों की दुष्टता वर्णन की हैं। पहिले उन्होंने उपाख्यानभागको छोड़कर चौबीस सहस्र श्लोकों में भारत संहिता रची थी; पण्डितगण उन्हीं चौबीस सहस्र श्लोकों ही को भारत कहा करते हैं। आगे वेदव्यासजीने सम्पूर्ण पर्व्व और वृत्तान्तों का संक्षेप कर आधेसो श्लोकों में अनुक्रमणिका-अध्यायको रचा। भगवान् द्वैपायन ने पहिले इसे अपने पुत्र शुकदेवजी को पढ़ाया और पीछे योग्य शिष्यों को भी प्रदान किया। इसके पीछे उन्होंने साठ लाख श्लोकों की दूसरी एक संहिता रची थी; उसके तीसलाख देवलोकमें, पन्द्रह लाख पितृलोकमें, चौदह लाख गन्धर्व्व-लोकमें और एक लाख श्लोक मर्त्त्यलोकमें प्रतिष्ठित हुए हैं। नारदजीने देवताओं को, असित देवलने पितरों को और शुकदेवजीने गन्धर्व्व, यक्ष औ राक्षसोंको वह सब श्लोक सुनाये थे। श्री व्यासजी महाराज के शिष्य सर्व्व वेदों के ज्ञाता, धर्म्मात्मा श्री वैशम्पायनजीने इस नरलोक में जनमेजय के सर्प-यज्ञके समय लाख श्लोकों की जिस भारत-संहिता को कीर्त्तन कियाथा, मैं उसको वर्णन करता हूं, आप लोग श्रवण कीजिये।

दुर्य्योधन मन्युमय अर्थात् अहङ्कारी महावृक्ष है; कर्ण उसका गुदा, शकुनि उस की शाखा, दुःशासन उसके बढ़े-चढ़े फल-फूल; और अज्ञान से अन्धे, प्रज्ञा-रहित धृतराष्ट्र उसकी जड़-रूपी हैं। युधिष्ठिर धर्म्ममय महावृक्ष हैं; अर्ज्जुन उसका गुदा, भीमसेन उसकी शाखा, नकुल और सहदेव उसके बढ़े-चढ़े फल-फूल और श्रीकृष्ण, वेद और ब्राह्मण उसकी जड़रूपी हैं। युधिष्ठिर का नाम लेने से धर्म्म बढ़ता है, भीमसेन का नामलेने से पाप जल-जाता है, अर्ज्जुनका नाम लेनेसे शूरता बढ़ती है और नकुल औ सहदेव के नाम लेनेसे आरोग्यता प्राप्त होती है।

राजा पाण्डु, अपनी बुद्धि और विक्रम से बहुत देश जय कर अन्त में अहेर खेलते हुए वनमें जाकर मुनियों के साथ बसे थे; वह भोग में आसक्त मृग को मारकर घोर विपद में पड़ेथे। उस वनमें आपद्धर्म्म के अनुसार कुन्ती और माद्री के गर्भमें धर्म्म, वायु, इन्द्र और दोनों अश्विनीकुमार—इन पाच देवताओंके औरस से पाण्डवों का जन्म हुआ और क्रमानु-

सार सदाचार की विधि से उनके जात-कर्म्मादि सब निर्व्वाह किये गये। पाण्डव लोग पवित्र-वन के भीतर बड़े बड़े तपस्वियों के पुण्याश्रम में साधुओंके सहित कुन्ती और माद्री से रक्षित होने और बढ़ने लगे। कुछकाल पीछे एक समय ऋषिलोग उन राजलक्षणों से सुशोभित, जटाधारी, ब्रह्मचारी शिशुओंको स्वेच्छासे धृतराष्ट्र-आदिके पास लेगये। आगे वे मुनिलोग यह कह कर, कि "ये पाण्डुपुत्रगण तुम्हारे पुत्र, भ्राता चेले और सुहृत् हैं" वहांसे लौट चले। इस प्रकारसे पाण्डवों को अर्पण कर मुनियोंके चले जाने पर, उन्हें देख देखकर साधु-कौरव लोग और नाना जातिके पुरवासी हर्ष-वश कोलाहल करनेलगे। कोई कोई बोले, "यह पाण्डुपुत्र नहीं हैं"; कोई कोई बोले, "हां येही पाण्डुकी सन्तान हैं।" दूसरे लोग, बोले, "राजा पाण्डु के परलोक गये, तो बहुत दिन हो चुके, अब उनके पुत्र कहांसे उपजे?" उस समय सर्व्वत्र पुरवासियों का यह शब्दही सुनाई देने लगा, कि "आज हमारा आना सब प्रकार शुभ निकला; क्योंकि सौभाग्यवश पाण्डुपुत्रों का दर्शन हुआ; हे पाण्डव! तुम तो कुशलसे आये न?" यह शब्द बन्द होनेपर दशों ओर से गूंजती हुई देवोंकी आकाशवाणी हुई। पाण्डवों के नगर में पहुंचते ही आश्चर्य-रूप से फूलों की वृष्टि, सुगन्ध का सञ्चार और शंख-नगाड़ों की ध्वनि होने लगी। उस आनन्द से पुरवासियों की कीर्त्ति बढ़ाने वाली औ आकाशतक पहुंचती हुई हर्षध्वनि उत्पन्न हुई। पाण्डव नाना शास्त्र और सम्पूर्ण वेद पढ़कर और निर्भय होकर बड़े आदर-सम्मानसे बसने लगे। प्रजा, युधिष्ठिर के शुद्धाचार, भीमसेनके धैर्य्य, अर्ज्जुन के विक्रम, नकुल और सहदेवकी नम्रता और कुन्ती की गुरुसेवा से परम प्रसन्न हुई; विशेष वीर पांचों भाई की शूरता ने सबों का सन्तोष उपजाया। आगे द्रौपदीके स्वयम्बरस्थलमें अगणित राजाओं के एकत्रित होने पर, अर्ज्जुनने कठोर लक्ष्यको भेद कर उस राजपुत्रीको जीत लिया। उस कालसे वह इस धरती परके धनुषधारियों के पूज्य हुए और रणक्षेत्र में सूर्य्यकी भांति उनपर किसी की दृष्टि नहीं ठहरती थी। आगे उन्होंने राजाओं और बड़े बड़े शूर-वीरों को जीतकर राजसूय-यज्ञ का आयोजन कर दिया। महाराज युधिष्ठिरने वासुदेव जी की सुन्दर नीति और भीमार्ज्जुनके भुजबल के सहारे अपरिमित अन्न और अनेक दक्षिणा दानकर सब प्रकार से श्रेष्ठ राजसूय यज्ञ किया। उस यज्ञमें बल-गर्व्वित जरासन्ध और अहङ्कारी शिशुपाल का विनाश हुआ था। कोषाध्यक्ष दुर्य्योधन के पास नाना स्थानों से मणि, सुवर्ण, रत्न, गौ, हाथी, घोड़े, रङ्गबिरङ्गके वस्त्र शिविर अर्थात् कपड़े के घर, यवनिका अर्थात् पर्द्दा, अच्छे अच्छे मृगचर्म्म, रङ्कु मृगके लोम से बने हुए चादरा—यह सब भेंट आने लगीं। पाण्डवों का वह बढ़ाचढ़ा ऐश्वर्य्य देखकर दुर्य्योधनके हृदय में द्वेष-घटित क्रोध आ समाया। उस यज्ञमें मयदानव कृत विमान-सदृश अपूर्व्व सभा देख कर वह दुःखसे जलने लगा। उस सभामें दुर्य्योधन को चलते समय भ्रमवश गिरते देखकर भीमसेनने श्रीकृष्ण चन्द्रके सम्मुख छोटे मनुष्य के समान अपमान दिखाकर उसकी बड़ी हंसी की। नाना प्रकार के रत्न और भांति भांति के भोग भोगने पर भी दुर्य्योधन चित्त-पीड़ासे मलिन, पीला और दुबला होने लगा। पुत्र-प्रेमी राजा धृतराष्ट्र के निकट यह बात कही जाने पर, उन्होंने जुआ खेलने की आज्ञा दी, यह सुनकर श्री वासुदेव जी को बड़ा क्रोध उपजा। उन्होंने बड़े असन्तोष के साथ उस झगड़ेमें अपनी सम्मति दी और विदुर, भीष्म, द्रोणाचार्य्य और शरद्वतके पुत्र कृपाचार्य्य की असम्मति से आपस की उस घोर लड़ाईमें भिड़े हुए क्षत्रियोंके नष्ट होनेके कारणरूपी भयावने जुआ

आदि नाना कुनीतियों की ओर ध्यान नहीं दिया। पाण्डवों के जय पाने के पीछे, राजा धृतराष्ट्र, उस अति अप्रिय वाणी को सुनकर और दुर्य्योधन, कर्ण और शकुनि की पूर्व्व-प्रतिज्ञा को स्मरण कर कर देरतक सोचने-समझने के पश्चात् सञ्जय से कहने लगे, "हे सञ्जय! मैं सब वृत्तान्त कहता हूं सुनो। तुम शास्त्रके ज्ञाता, मेधावान, बुद्धिमान और पण्डित-मण्डली में महामान्य हो; सो मुझ पर व्यर्थ दोष न लगाओ। देखो, युद्ध कुछ मेरा अभीष्ट नहीं था और न मैं कुल-क्षय होने से सन्तुष्ट होता हूं, मेरे पुत्र और पाण्डुके पुत्रों में कुछ विशेष भी नहीं है। मेरे ईर्षाभरे पुत्रगण मुझको वृद्ध जानकर मानते ही नहीं; मैं अन्धा और दीन हूं; सो पुत्र-स्नेह से सब सह लेता हूं, अचेत दुर्य्योधन के मोहयुक्त होनेसे मैं भी मोह में पड़ता हूं। क्षत्रियवंशी दुर्य्योधन राजसूय यज्ञ में बड़े प्रभावी युधिष्ठिर का अपार ऐश्वर्य्य देखकर और सभा में जाने के समय उसप्रकार हंसी जाकर सह नहीं सका; और युद्ध में स्वयं पाण्डवों का पराजय करने में असमर्थ होकर पहिले राजलक्ष्मी पाने का उत्साह खो दिया; पीछे राजा गान्धार से कपट जुए की युक्ति की। उस कालमें मैं जो कुछ जान सका था, वह सुनो। हे सूत-पुत्र! मेरे वह सब बुद्धि-युक्त वचन सुनकर मुझे सच्चा बुद्धिमान जानोगे"।

"जब सुना, कि अर्ज्जुन ने विचित्र धनुष चढ़ाकर लक्ष्य का भेद करके धरती पर गिराया है और सब राजाओं के सामने से द्रौपदी को हर लाया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अर्ज्जुन ने द्वारकामें जाकर माधवकी छोटी बहिन, सुभद्रा-से बलपूर्व्वक विवाह किया है और तिसपर भी श्री बलराम जी और श्री कृष्णचन्द्र दोनों इन्द्रप्रस्थमें आये हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि खाण्डव-दाह के काल में देवराज के जल बरसाने पर अर्ज्जुन ने दिव्य बाणोंसे वृष्टिको रोक कर अग्नि को प्रसन्न किया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि पाण्डव लोग कुन्ती-सहित जतुगृह से बच गये और विदुर उनकी मङ्गल-चेष्टा कर रहा है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि रङ्ग-स्थलमें अर्ज्जुनने लक्ष्यका भेद कर जय सहित द्रौपदी का लाभ किया है और महाबली पाञ्चाल और पाण्डव एक हो गये हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की, जब सुना, कि भीमसेन ने क्षत्रियों में बड़े तेजस्वी, मगधनाथ जरासन्धका भुजबलसे मार डाला है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी नहीं की। जब सुना, कि पाण्डुपुत्रों ने दिग्विजयमें सब नरेशोंका बल-पूर्व्वक अधीन कर राजसूय महा-यज्ञ सम्पूर्ण किया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि रोती-पीटती, एक-वस्त्र-पहरी-हुई, दुःखमें-डूबी, रजस्वला, सनाथ द्रौपदी अनाथ की भांति सभामें लिवाई गई है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि कुबद्धि कपटी दुःशासन ने उस सभाके बीच में द्रौपदी के अङ्ग से वस्त्र खींच कर ढेर लगाया और तिस पर भी वस्त्रका पार नहीं पासका, हे सञ्जय! तभी मैंनेफिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि शकुनि ने युधिष्ठिर को जुए में हराकर राज हरलिया है और तिस पर भी, बड़े प्रतापी भाई लोग युधिष्ठिर के आज्ञाधीन बने हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना कि धार्म्मिक पाण्डव लोग वनमें जाकर बड़े भाई को प्रसन्न रखने के लिये अनेक कष्ट उठाते हुए बड़ी बड़ी चेष्टा करते हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि सहस्रों महानुभाव स्नातक और भिक्षा-भाग लगानेवाले

ब्राह्मणगण वनमें धर्मराज के अनुगत हुए हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अर्जुनने किरात-रूप-धारी देवादिदेव महादेव को युद्धमें प्रसन्न कर पाशुपत नामक महा-अस्त्र पाया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि प्रशंसा-योग्य और सत्य-प्रेमी धनञ्जय देवलोक में जाकर इन्द्रजीसे विधिपूर्व्वक दिव्य अस्त्र सीख रहा है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि उसने बरदान-गर्व्वित, देवों के अजेय, पुलोम-पुत्र काल-केय नाम दुष्ट असुरों की जय किया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि शत्रनाशी किरीटी असुर-वध के लिये इन्द्र-लोक में जाकर कार्य्य पूरा करके लौट आया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि भीम और दूसरे पाण्डु-पुत्रगणोंने मनुष्योंके न-जाने-योग्य देश में जाकर श्रीकुबेरजी से भेंट की है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि कर्ण के मतानुसारी मेरे पुत्रगण घोषयात्रा में जाकर गन्धर्व्वों से पकड़े गये और अर्जुन से मुक्त हुए, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि धर्म्म ने यक्षका स्वरूप धारण करके युधिष्ठिर के समीप आकर कुछ प्रश्न पूछे हैं और उसने ठीक२ उत्तर देदिये हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि पाण्डवगण द्रौपदी-सहित विराट-राज्य में गुप्त-भावसे टिके थे, पर हमारी ओरके किसीने यह हाल नहीं जाना, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि महात्मा पाण्डवों के विराट-नगर में रहने के काल में एकरथ धनञ्जय ने हमारी ओर के बड़े२ योद्धाओं को परास्त किया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि मत्स्य-राजने अर्जुनको नाना अलङ्कारों से सुहाती हुई अपनी उत्तरा नाम कन्या अर्पण करदी है और अर्जुनने उस कन्याको अपने पुत्र, अभिमन्यु के निमित्त ग्रहण किया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि युधिष्ठिरने, जीतेजाने, निर्धन होने, देशसे निकाले जाने और अपने जनों से छोड़े जाने परभी सात अक्षौहिणी सेना एकत्रित की है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि यह भूलोक जिनके एक पद के समान हुआथा, वही मधुवंशी वासुदेव सब प्रकार से पाण्डवों के हित साधने की चेष्टा कर रहे हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब नारदजी से सुना, कि श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन नर नारायण के अवतार हैं और उन्होंने उनको ब्रह्म-लोक में भलीभांति दर्शन किया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि श्रीकृष्णचन्द्र लोकों के हितार्थ दुर्य्योधन से मेल करनेको आये थे; पर सफल मनोरथ न होकर लौट गये हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि कर्ण और दुर्य्योधन ने श्री कृष्णचन्द्र को कष्ट में डालने की चेष्टा की है, पर उन्होंने उनको अपना विश्वरूप दिखाया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि श्री वासुदेवजीके जानेके कालमें रोती-पीटती हुई कुन्ती उनके रथके सामने खड़ी हुई है और उन्होंने उसको अनेक प्रकार से समझाया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि श्री वासु-देवजी और शान्तनु-पुत्र भीष्म दोनों, पाण्डवों के मन्त्री बने हैं और भारद्वाजद्रोण उन्हें असीस दे रहे हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर

जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि कर्ण भीष्मसे यह कहकर, कि "तुम युद्ध करोगे, तो मैं न लड़ूंगा" सेना को छोड़ कर चला गया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि श्री कृष्णचन्द्र, अर्ज्जुन और अप्रमेय गाण्डीव धनुष, यह तीन कठोरवीर्य्य पदार्थ एक साथ मिल गये हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि रथारूढ़ अर्ज्जुन के मोह-युक्त और विकल होने पर श्री कृष्णचन्द्र ने उसको अपने शरीरमें चौदहों भुवन दिखाये हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि शत्रुनाशी भीष्मजी रणभूमि में नित्य दशसहस्र रथियों को नष्ट करके भी शत्रुओं में से एकभी प्रसिद्ध पुरुष को मार नहीं सके, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि गङ्गा-नन्दन, धार्म्मिकवर भीष्मजीने अपनी मृत्युका उपाय स्वयंही पाण्डवों से कह दिया और उन्होंने प्रसन्नमन से उसी उपाय को आश्रय किया, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अर्ज्जुन ने शिखण्डी को सामने रखकर युद्ध में बड़े कठोर महावीर भीष्मजी को घायल किया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि वृद्धवीर भीष्मजी सोमक सेनाओं को प्रायः नष्ट होने की दशामें पहुंचा-कर स्वयं बाणों से छिदे भेदे गये हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि भीष्मदेवने शरशय्या पर शयनकर अर्ज्जुन को जल लाने की आज्ञा दी है और उसने धरती से जल निकाल कर उनको प्रसन्न किया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि वायु, इन्द्र और सूर्य्य पाण्डवों को जय देने के निमित्त उनके सहायक बने हैं और हिंसक जन्तुगण हमको भय दिखा रहे हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि आश्चर्य्ययोद्धा द्रोणाचार्य्य जी रणभूमि में अस्त्र चलाने के अनेक कौशल दिखा करके भी पाण्डवपक्षके किसी श्रेष्ठ पुरुष को नहीं मारते, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि हमारी ओर की संसप्तक नामक सेना अर्ज्जुन को मारने के लिये व्यूह रचने पर भी, आपही युद्ध में अर्ज्जुन से मारी गई है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अद्वितीय वीर अभिमन्यु, शस्त्रधारी द्रोणाचार्य्य से रक्षित और दूसरों से न-भेदे-जाने-वाले चक्रव्यूह को भेद कर उसमें प्रवेश कर गया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि महारथी योद्धालोग अर्ज्जुन को वध करने में अशक्त होकर बालक अभिमन्युको चारों ओर से घेर करके मारकर आनन्द कर रहे हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि वीरों के, अभिमन्युको मारकर आनन्दसे मोहित हो कोलाहल मचाने पर अर्ज्जुन ने क्रोध से जल-कर जयद्रथवधकी प्रतिज्ञा की है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अर्ज्जुन, जयद्रथ-वध की प्रतिज्ञा करके शत्रुओं के बीचमें उस सत्य-प्रतिज्ञा से उत्तीर्ण हुआ है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अर्ज्जुन के घोड़ों के थकने पर, श्री कृष्णचन्द्र उनको बन्धन से मुक्त कर जल पिला लेने के पश्चात् फिर जोत कर रथको हांक लेगये हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि घोड़ोंके अशक्त होने पर पाण्डुपुत्र अर्ज्जुन ने अकेले रथपर रहकेसम्पूर्ण वीरों को हराया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि

वृष्णिवंशी सात्यकि, हाथी पर चढ़ी हुई सेनाओं के द्वारा द्रोणाचार्य्यके बड़े कठोर दल को भेद कर श्रीकृष्णचन्द्र और अर्ज्जुन के पास जा पहुंचा है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि कर्णने भीम को न वध कर धनुषकी कोटिसे सता सता करके "मूर्ख, पेटू" आदि बातोंसे लाञ्छन-पूर्व्वक छोड़ दिया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि द्रोणाचार्य्य, कृतवर्म्मा, कृपाचार्य्य, कर्ण अश्वत्थामा और वीरवर मद्रराजने बदला लेनेमें अशक्त होकर जयद्रथवधके दुःख को सह लिया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि माधव ने घोररूपी घटोत्कच राक्षस पर इन्द्रजीकी दीहुई दिव्यशक्ति को चलवाकर उसको व्यर्थ कर दिया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि कर्ण ने अर्ज्जुन के मारने के लिये रखी हुई दिव्य-शक्ति को घटोत्कच से लड़ने में उस पर चलाया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि द्रोणाचार्य्य के अस्त्र छोड़कर अनशन-मृत्यु की इच्छा से अकेले रथ पर बैठने पर धृष्टद्युम्नसे धर्म्म-लङ्घन कर उनको मारा है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि माद्री-पुत्र नकुल ने युद्ध-मण्डल में घूम घाम कर सब लोगोंके सामने अश्वत्थामा के साथ समान-भावसे द्वैरथ युद्ध किया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि द्रोणाचार्य्यजीके मारे जाने पर अश्व-त्थामा दिव्य नारायण-अस्त्र मारके भी पाण्डवों को मार नहीं सका, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि रणभूमि में भीमसेन ने भाई दुःशासन का रक्त पीया और कोई उसको रोक नहीं सका, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि दैव-निरूपित भ्रातृयुद्ध में अर्ज्जुन ने रणमें-बड़े-कठोर महावीर कर्णको नष्ट किया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि धर्म्मराज युधिष्ठिर ने वीरवर द्रोणपुत्र, दुःशासन और उग्रस्वभावी कृतवर्म्मा को जीत लिया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि वही मद्रराज जो श्रीकृष्णचन्द्रसे लड़ने का अहङ्कार रखते थे, रणवीर युधिष्ठिर से हने गये हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि पाण्डुपुत्र सहदेव ने कुखेल और झगड़े की जड़, पापिष्ठ, छली शकुनि को लड़ाई में मारा है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अकेला, हीनबल, रथरहित, थका-मादा दुर्य्योधन ह्रद में जाकर जलस्तम्भ रचके रह गया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि पाण्डवगण श्रीकृष्णचन्द्र के संग ह्रदके निकट खड़े होकर मेरे पुत्र असहनशील दुर्य्योधन को लाञ्छन कर रहे हैं, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि गदायुद्ध में नाना आश्चर्य्य कौशल दिखानेवाला दुर्य्योधन, मण्डलाकार में घूमते समय वासुदेव की परामर्श से अन्याय-रूप से घायल हुआ है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। जब सुना, कि अश्व-त्थामा आदिने रात्रिको सोतेहुए पाञ्चालों और द्रौपदी के पुत्रों को नष्ट कर अति घृणित और अयशका कार्य्य किया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि भीम को पुत्र-वध के कारण क्रोध से अन्धे बनकर अपने पीछे दौड़ते हुए देखकर अश्व-त्थामा ने ऐषिक नामक परमास्त्र मारकर उत्तरा का गर्भ नष्ट किया है, हे सञ्जय! तभी

मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अश्वत्थामाने अर्ज्जुनवधके निमित्त ब्रह्मशिरः नामक अव्यर्थ अस्त्रको मारा है, पर अर्ज्जुनने "स्वस्ति" कह कर अपने अस्त्र से उस अस्त्र को रोक दिया है और अश्वत्थामा ने उसको मणि-रत्न दे दिया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जय की आशा नहीं की। जब सुना, कि अश्वत्थामा को महास्त्र से विराट-पुत्री का गर्भ नष्ट करते देखकर द्वैपायनजी और श्रीकृष्णचन्द्र दोनों ने उसको शाप दिया है, हे सञ्जय! तभी मैंने फिर जयकी आशा नहीं की। इस समय गान्धारी, पुत्र, पौत्र, स्वजन, पिता और भ्राता को खोकर बड़ी विकल हुई है, पाण्डवों ने दुष्कर कर्म्म कर फिर अपने राज्य को अक-एटक कर लिया है। हा! कैसा कष्ट है! सुनते हैं, कि हमारी ओरके तीन और पाण्डव-पक्ष के सात, केवल येही दश मनुष्य जीते हैं, इस भयानक युद्ध में क्षत्रियों की अठा-रह अक्षौहिणी नष्ट-भ्रष्ट होगई, हे सूत! मैं चारों ओर अंधेरा देखता हूं, मोहसे विकल हो रहा हूं, चेतना मुझे छोड़ कर भाग रही है, चित्त बड़ा उदास होरहा है"।

श्री उग्रश्रवा जी बोले, कि राजा धृतराष्ट्र अति खेदयुक्त होकर इस प्रकार बहुत विलाप करके मूर्च्छित हो गये। आगे फिर चेतना आजाने पर सञ्जय से यह बात कहने लगे, "हे सञ्जय! मेरी दशा इस प्रकार बिगड़ गई है, कि मैं इसी समय बिना विलम्ब प्राण छोड़ना चाहता हूं, मेरे इस जीवन के रखने का कुछ भी फल नहीं दीखता।

श्री उग्रश्रवा जी महाराज बोले, कि इतनी कथा कहनेके पीछे दीनभाव-युक्त राजा धृत-राष्ट्र को उन्मत्तगज की भांति लम्बी शांस छोड़२ विलाप करते हुए हरघड़ी मोहवश देखकर धीमान् सञ्जय उनसे उत्तम अर्थयुक्त यह वचन बोले, "महाराज! आपने धीमान् नारद और वेदव्यासजी के मुख से यह सुना होगा, कि महारथी शैव्य, जयशील, सृञ्जय, सुहोत्र और रन्तिदेव; अति प्रभावी काक्षी-वान्, वाल्हीक और दमन; शत्रुनाशी शर्य्याति, अजीत, नल और विश्वामित्र; महाबली अम्ब-रीष, महात्मा मरु, मनु, इक्ष्वाकु, गय, भरत, परशुराम, राम, शशविन्दु, भगीरथ, कृतवीर्य्य औ जनमेजय; और शुभकर्म्मशील ययाति, स्वयं देवताओंने जिनको यज्ञ कराया था और जिनके यज्ञीय यूपसमूह में कानन सहित मही-मण्डल अङ्कित हुआ था;—ये सब सर्व्वगुण-सम्पन्नलोग, प्रधान२ राजवंश में जन्मलेने, इन्द्र-जीके सदृश तेजस्वी और दिव्य अस्त्रों में निपुण होने, धरणीमण्डल को धर्म्मयुद्ध से जय करलेने, और नाना यज्ञानुष्ठान कर इसलोक में अतुल यशोलाभ करने पर भी अन्त में काल कवल में पतित हुए हैं।

पूर्व्वकाल में राजा शैव्य के पुत्रशोक से विकल होने पर देवर्षि नारदने उनके समीप इन चौबीस राजाओं के उपाख्यानों को कीर्त्तन किया था; इनके अतिरिक्त और भी बहुतेरे अतिबलशाली महारथी, सर्व्वगुणशील महात्मा राजा कालगर्भमें लय पागये हैं। सुना जाता है, कि पुरु, कुरु, यदु, शूर, विश्वगश्व महाद्युति, अणुह, युवनाश्व, ककुत्स्थ, विक्रमी रघु, विजय, वीतिहोत्र, अङ्ग, भव, श्वेत, वृह-द्गुरु, उशीनर, कङ्क, दुलिदुह, द्रुम, दम्भोद्भव, पर, वेणु, सगर, सङ्कृति, निमि, अजेय, परशु, पुन्द्र, देवावृध अनघ, देवाह्वय, सुप्रतिम, सुप्र-तीक, वृहद्रथ, महोत्साह, विनीतात्मा, सुक्रतु, नैषध नल, सत्यव्रत, शान्तभय, सुमित्र, सुवल, प्रभु जानुजङ्घ, अनरण्य अर्क प्रियभृत्य, शुचिव्रत, बलबन्धु, निरामर्द्द, कृतुशृङ्ग, वृहद्दल, धृष्टकेतु, बृहत्केतु, दीप्तकेतु, निरामय, अविक्षित, चपल, धूर्त्त, कृतबन्धु, दृढ़ेयुधि, महापुराणसम्भाव्य, प्रत्यङ्ग, परहा, श्रुति, ये सब राजा और दूसरे

सैकड़ों, सहस्रों, पद्मसंख्यातक के धीशक्तिमान्, अति बलवान्,प्रतापवान् राजगण आपके पुत्रोंके सदृश अपार ऐश्वर्य्य छोड़कर परलोकको गये हैं। पण्डित सुकविगण पुराण में जिनके अलौकिक कार्य्य, विक्रम, दान-माहात्म्य, आस्तिकता, सत्यनिष्ठा शौच, दया, सरलता आदि कीर्त्तन करते हैं, वह सब सर्व्व-गुण-सम्पन्न महाधन महात्मा भी निधन होगये हैं। आपके पुत्रगण दुरात्मा, द्वेषी, लोभी और बड़े दुराचारी थे, अतएव उनके निमित्त शोक करना नहीं चाहिये। आप शास्त्रज्ञ मेधावान्, धीमान् और पण्डित-समाज में अति सम्मानित हैं; जिनकी बुद्धि शास्त्रानुसारिणी होती है, वे कभी मोहवश नहीं होते। आप तो जानते ही होंगे, कि आपने पाण्डवों को निर्द्दया और अपने पुत्रों को दया दिखाई थी। ऐसा तो कहीं सुना नहीं जाता, कि किसी दूसरे ने अपनी सन्तान-रक्षा के निमित्त आपके सदृश यत्न किया हो; पर जो होना था सो होचुका, अब उस बारे में खेद न करें। जो कुछ भाग्य में बदा है, कौन उसे कौशल से रोक सकता है? विधाता-निर्णीत पथ को कोई भी लङ्घन नहीं कर सकता। भाव, अभाव, सुख, दुःख सबही कुछ कालवश संघटित होते हैं; काल जीवों को सृजन कर रहा है, फिर कालही उनको संहार कर रहा है; काल प्रजाओं को जलाता है, फिर कालही उनको शीतल करता है। सारे भुवनमण्डल के शुभाशुभ सम्पूर्ण पदार्थ कालही से बन रहे हैं, कालही में लय पाजाते हैं और कालही से फिर उत्पन्न होते हैं; सब जीवों के सोजाने परभी काल सजग रहता है, काल को कोई अतिक्रम नहीं कर सकता है; काल बिना बाधा-विपत्ति सब भूतोंमें तुल्य-भाव से विचर रहा है। वर्त्तमान, भूत, भविष्यत्, सभी वस्तु कालसे रची हुई हैं,यह सब जानकर आप को मोहवश न होना चाहिये।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, सञ्जयने शोकार्त्त जननाथ धृतराष्ट्र को इस प्रकार से समझा बुझा कर शान्त किया। श्रीकृष्णद्वैपायनजी महाराज इस विषय में परम पवित्र उपनिषत् कह गये हैं, जिसे विद्वान् सुकविगण पुराण और लोकमण्डली में कीर्त्तन करते हैं। इस भारत-ग्रन्थ के पढ़ने का पुण्य इतना है, कि यदि कोई इसकी एक चरण कविता भी श्रद्धा-सहित पढ़े, तो वह सब पापों से मुक्त होकर पवित्र होता है। इस भारत में निष्पाप और सत्कर्म्मशील देव, देवर्षि, महोरग और यक्षों का वर्णन है। जो सत्य और ऋतस्वरूप, पवित्र और पवित्रकारी, नित्य और निर्म्मल, ज्योतिस्वरूप और सनातन परब्रह्म हैं; पण्डितगण जिनके लोकातीत कार्य्यों को कीर्त्तन करते हैं; जिन से बचनातीत, कार्य्य-कारण-आत्मक यह विश्व, हिरण्यगर्भादिरूप में विश्वका विस्तार, यागादि कर्म्मकी प्रवृत्ति, जन्म, मृत्यु, और फिर उत्पत्ति हो रही हैं; जो अध्यात्म रूप में पञ्चभूती देहके अधिष्ठाता और अव्यक्तादि सम्पूर्ण वस्तुओंसे भिन्न करके वेद में वर्णित हुए हैं और जिनको जीवन्मुक्त यतिश्रेष्ठ लोग ध्यान और योगबल से आदर्शमें-स्थित प्रतिबिम्बके सदृश अवलोकन करते हैं, वही सनातन भगवान् वासुदेव इस ग्रन्थ में कीर्त्तित हुए हैं। धर्म्मशील नर, नियम और श्रद्धा के साथ इस अध्याय को पाठ करके सम्पूर्ण पापों से मुक्त होते हैं। आस्तिक पुरुष भारतग्रन्थ के इस अनुक्रमणिका-अध्याय को प्रथम से सदा सुना करें, तो किसी क्लेश से कातर नहीं होवें। सन्ध्या और प्रातःकाल में इस अनुक्रमणिका-अध्याय को कुछ कुछ पाठ करने से दिन और रात्रिके सब पाप उसी काल में छूट जाते हैं। यह अनुक्रमणिका-अध्याय महाभारतकी सत्य और अमृतभरी देहके सदृश हुआ है। जैसे दधि में मक्खन,

द्विपद जीवों में ब्राह्मण, वेद में आरण्यक, औषधियोंमें अमृत, जलाशयोंमें समुद्र और चतुष्पदों में गौ श्रेष्ठ हैं, तैसेही इतिहासों में यह महाभारत प्रधान है। जो पुरुष श्राद्धके काल में इस अध्याय का कमसे कम एक चरण भी ब्राह्मणोंको सुनाता है, उसके दिये हुए अन्न और पान पितृलोकमें अक्षय होते हैं। इतिहास और पुराण से वेदका अर्थ प्रकाश हुआ है; क्योंकि थोड़ी-विद्या पढ़े-हुए जनसे वेदको यह भय उपजता है, कि वह मुझे मारेगा। पण्डितगण श्रीकृष्ण-द्वैपायनजी के कथित इस वेदको सुनाकर अर्थ पाते हैं और निश्चय ही भ्रूणहत्यादि पापों को भस्म कर देते हैं। जो पुरुष शुचि हो करके इस अध्यायकी पर्व्वों के क्रमसे पाठ करता है, मेरी समझ में उसको सम्पूर्ण भारत को पढ़ने का फल मिलता है। जो पुरुष श्रद्धायुक्त होकर ऋषि-सेवित इस अध्याय को नित्य सुनाता है, वह दीर्घायु हो और कीर्त्तिलाभ कर अन्तको देवलोक में चला जाता है। पूर्व्वकालमें सब देवताओंने मिलकर तराजू की एक ओर चारों वेद और दूसरी ओर इस भारत को चढ़ाकर तौल किया था, इससे रहस्य-सहित चारों वेदोंसे यही भारी निकला। उस दिनसे लोग इसको महाभारत कहा करते हैं। यह बड़ाई और गरुआई में वेदसे बढ़ कर है, सो बड़ाई और गरुआई के कारण महाभारत ही करके प्रसिद्ध हुआ है। जो पुरुष महाभारत ग्रन्थके सत्यार्थसे विदित होता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। तपस्या, पठन, सन्ध्या-वन्दनादि सम्पूर्ण वेद-विधि और राजाओंके युद्ध और नगर-आक्रमण कदापि पापजनक नहीं हो सकते; पर वे असद अभि-प्रायसे दूषित होवें, तो निःसन्देह पापजनक होते हैं।

आदिपर्व्व प्रथम अध्याय और अनुक्रमणिकापर्व्व समाप्त।

ऋषिगण बोले, हे सूतनन्दन! तुमने जिस समन्तपञ्चक देशका नाम किया था, हम उसके सब सत्य वृत्तान्तों को सुना चाहते हैं। सूतपुत्रजी बोले, हे सत्तमगण! मैं समन्तपञ्चक तीर्थका सब वृत्तान्त वर्णन करता हूं; श्रवण कीजिये।

त्रेता और द्वापर युगोंके सन्धिकाल में अस्त्रविद्याके पारङ्गत भगवान् परशुरामजीने क्रोधकेवश में होकर पृथ्वी परके समस्त क्षत्रिय कुलको बार बार विनाश किया था। उन अग्नितुल्य तेजस्वी रामने अपने भुजवीर्य्यके बलसे क्षत्रियकुलका सत्यानाश कर उनके शोणितसे समन्तपञ्चक में पांच ह्रद बनाये थे। सुना है, कि क्रोधयुक्त होकर उन रक्त भरे ह्रदों के किनारे उन्होंने रक्त से पितरोंका तर्पण किया था; अनन्तर ऋचीक आदि पितृलोक आकर बोले, "हे महाभाग, महातेजस्वी भृगुनन्दन राम! तुम्हारी यह पितृभक्ति और विक्रम देखकर हम अति प्रसन्न हुए हैं, तुम्हारा मङ्गल होवे, अब मनमाना वर मांगो।" परशुरामजी बोले, कि यदि मेरे पितृलोक प्रसन्न होकर कृपा करते हों, तो यह वर मांगता हूं, कि मैंने क्रोधपूर्व्वक क्षत्रिय कुलको नष्टकर जो पाप किया है, उससे मुक्त हो जाऊं और मुझसे बने हुए रक्त के यह पांचों भील भूमण्डल में प्रसिद्ध तीर्थ बनें। अनन्तर पितरोंने "वही होगा" ऐसा कहकर "क्षमस्व" इस बचनसे उन्हें क्षत्रियकुलके उच्छेद करनेसे निवृत्त किया, और वह भी उस कार्य्य से दूर रहे। रक्तरूपी जलयुक्त इन पांच ह्रदों के आस पास जो देश है, वह पवित्र समन्तपञ्चक नामसे प्रसिद्ध हुआ है। क्योंकि जिस देशमें जो कुछ चिन्ह होते हैं, पण्डितगण उन्हीके अनुसार उस देशका नाम ठहराते हैं। द्वापर और कलियुगके सन्धिकालमें उसी समन्तपञ्चक देशमें कुरु-पाण्डवी-सेनाओं में

संग्राम हुआ था। उस भूदोष-वर्ज्जित धर्म्म-भरे देशमें अठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध करनेकी कामना से गई थी। हे द्विजो! वे वहीं मिलकर वहीं मारी गईं। हे व्रतशील, साधु ब्राह्मणो! मैंने आप लोगोंसे जिस पुण्य-भरे सुन्दर देशका नाम लिया था, उसके समन्तपञ्चक नाम पड़नेका वृत्तान्त सम्पूर्ण कह सुनाया है।

ऋषिगण बोले, हे सूतनन्दन! आपने जो अक्षौहिणी शब्द कहा, हम उसका सच्चा अर्थ सुना चाहते हैं। एक अक्षौहिणीमें कितने पैदल, कितने घोड़े, कितने रथ, कितने हाथी रहते हैं, वह आप जानते हैं, सो हमारे निकट ठीक ठीक वर्णन कीजिये।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, एक रथ, एक हाथी, पांच पैदल और तीन घोड़े मिलकर एक पत्ति होती है; तीन पत्तिओंसे एक सेनामुख; तीन सेनामुखोंसे एक गुल्म; तीन गुल्मों से एक गण; तीन गणोंसे एक वाहिनी; तीन वाहिनियोंके एक होनेपर पृतना कही जाती है, और तीन पृतनाओं से एक चमू होती है; तीन चमुओंसे एक अनीकिनी होती है; दश अनीकिनियों के एकत्र मिलने से पण्डित लोग एक अक्षौहिणी कहते हैं। हे द्विजश्रेष्ठगण! संख्या गिननेके तत्व जाननेवाले पुरुषों ने अक्षौहिणी सेनाकी यह संख्या लगाई है, कि (२१,८,७०) इकीस सहस्र ८ सौ सत्तर रथ, उतनेही गज, (१०,९,३,५०) एक लक्ष, नौ सहस्र, तीन सौ पचास पैदल और (६५,६,१०) पैंसठ सहस्र६ सौ दश घोड़ोंसे एक अक्षौहिणी बनती है। हे तपोधनो! मैंने पहिले कहा है, कि कुरु-पाण्डवों की ऐसीही अठारह अक्षौहिणी सेना उस देशमें जामिली थीं। हे द्विज श्रेष्ठगण! वे कौरवोंकी उपलक्ष करके आश्चर्य्यकार्य्यकारी काल के आजाने पर उसीदेश में नष्ट ही गईं। परमास्त्रों के जाननेवाले भीष्मजीने दश दिन युद्ध किया था। द्रोणाचार्य्यने पांच दिन कौरवी-सेनाकी रक्षा की थी। शत्रु-सेना-नाशी कर्णने दो दिन और शल्य ने आधादिन युद्ध किया था, अनन्तर आधादिन भीम और दुर्य्योधन में गदा युद्ध हुआ था। उसदिन रात्रि को अश्वत्थामा, कृतवर्म्मा और कृपाचार्य्य, इन तीनों ने युधिष्ठिर की विश्वासी और निद्रित सेनाओं पर आक्रमण किया था।

हे शौनक जी! मैं आपके यज्ञमें जो सुन्दर भारतोपाख्यान कीर्त्तन कर रहा हूं, श्रीमहाराज व्यासजीके-शिष्य, धीमान् वैशम्पायन जी ने उसे जनमेजय के सर्पयज्ञ में विस्तार-पूर्व्वक कहा था। इस में राजाओं के यश और वीर्य्य की कथा कही गई है। इसकी आदि में पौष्य, पौलोम और आस्तीक, यह तीन पर्व्व हैं। इसमें विचित्र पद, आख्यान और नाना-प्रकार के आचारादि प्रकाशित हुए हैं, मोक्षार्थी जन जैसे वैराग्य को आश्रय करते हैं, तैसेही प्राज्ञलोग इस भारतकी शरण लिये रहते हैं। जैसे जानने योग्य वस्तुओं में आत्मा और प्यारीवस्तुओं में जीवन प्रधान है, तैसे ही श्रेष्ठ विषयों से भरा हुआ यह इतिहास सम्पूर्ण आगमों में बढ़िया बना है। जैसे भोजन बिना शरीर-धारण का दूसरा उपाय नहीं है, तैसे ही इस आख्यान की शरण बिना, भूमण्डल में कोई दूसरा आख्यान विद्यमान नहीं है। जैसे उन्नति चाहनेवाले नौकर चाकर, सद्वंशी राजा का आश्रय लेते हैं, तैसे ही कविगण इस भारत को अवलम्बन करते हैं। जैसे सब लौकिक और वैदिक वाक्य, स्वर और व्यञ्जन वर्णों से परिपूर्ण रहते हैं, तैसेही इतिहासों में श्रेष्ठ यह भारत, हितसाधनेवाली बुद्धि का आधार हुआ है। इस समय आप लोग अनन्त प्रज्ञाके आधार, विचित्र पद और पर्व्व संयुक्त, सूक्ष्मार्थ न्याय विशिष्ट और वेदार्थ-विभूषित भारत इतिहास का पर्व्वसंग्रह श्रवण कीजिये।

प्रथम अनुक्रमणिका पर्व्व (१) द्वितीय पर्व्व-संग्रह पर्व्व (२) आगे पौष्य पर्व्व (३) पौलोम-पर्व्व (४) आस्तीकपर्व्व (५), और आदिवंशाव-तारण पर्व्व (६) अनन्तर जिसके श्रवण करने से हर्ष से शरीर रोमाञ्चित होता है, वही विचित्र सम्भवपर्व्व (७), आगे जतुगृह-दाह-पर्व्व (८), तिसके बाद हिड़म्बपर्व्व (९), अनन्तर वकवध-पर्व्व (१०), चैत्ररथपर्व्व (११) पश्चात् देवी पाञ्चाली स्वयम्बरपर्व्व (१२), तिसके बाद क्षत्रिय-धर्म्म में जयलाभके पश्चात् पाण्डवों का विवाह-पर्व्व (१३), अनन्तर विदुरागमनपर्व्व (१४), पीछे राज्यलाभपर्व्व (१५) तब अर्ज्जुन का वनवासपर्व्व (१६), पश्चात् सुभद्राहरणपर्व्व (१७), सुभद्राहरणके बाद यौतुकाहरणपर्व्व (१८) अनन्तर खाण्ड वदाहपर्व्व, जिसमें मय-दानव का दर्शन हुआ (१९), आगे सभाक्रिया-पर्व्व (२०), तब मन्त्रणापर्व्व (२१), अनन्तर जरासन्धवधपर्व्व (२२), तिसके अन्तर दिग्वि-जय पर्व्व (२३), दिग्विजयके बाद राजसूयिकपर्व्व (२४), पश्चात् अर्घाभिहरणपर्व्व (२५), तिसके बाद शिशुपालवधपर्व्व (२६), अनन्तर द्यूतपर्व्व (२७), पश्चात् अनुद्यूतपर्व्व (२८), अनन्तर अरण्ययात्रा-पर्व्व (२९), तब किर्म्मीरवधपर्व्व (३०), तिसके बाद अर्ज्जुनाभिगमनपर्व्व (३१), तब ईश्वरा-र्ज्जुनके युद्धसम्बन्धी किरातपर्व्व (३२), अनन्तर इन्द्रलोकाभिगमनपर्व्व, (३३), तब धर्म्म और करुणारसयुक्त नलोपाख्यानपर्व्व (३४), तिसके बाद कुरुराज युधिष्ठिर का तीर्थयात्रापर्व्व, उसी में जटासुरवध वर्णित हुआ है (३५), तब यक्षयुद्धपर्व्व (३६) तब निवातकवचयुद्धपर्व्व (३७), अनन्तर आजगरपर्व्व (३८), तब मार्कण्डेय समस्यापर्व्व, (३९), तिसके बाद द्रौपदी-सत्य-भामा-सम्वादपर्व्व (४०), अनन्तर घोषयात्रापर्व्व उसी में मृगस्वप्नोद्भव और मुद्गल ऋषिका व्रीहि-द्रौणिक उपाख्यान है (४१), तब द्रौपदीहरण-पर्व्व उसी में जयद्रथमन्थन, पतिव्रता साविज्ञी का अद्भुत माहात्म्य और रामोपाख्यान कथित हुए हैं (४२), आगे कुण्डलाहरणपर्व्व (४३) तिसके बाद आरणेयपर्व्व (४४), अनन्तर विराटपर्व्व के अन्तर्गत पाण्डवों का प्रवेश और समयपालनपर्व्व (४५), आगे कीचकवधपर्व्व (४६), अनन्तर गोग्रहणपर्व्व (४७), तब अभि-मन्यु और उत्तरा का विवाहपर्व्व (४८), अन-न्तर अति आश्चर्य सैन्योद्योगपर्व्व (४९), तब सञ्जययानपर्व्व (५०) तिसके पश्चात् चिन्तायुक्त धृतराष्ट्र का प्रजागरपर्व्व (५१) अनन्तर गुह्य-त्मक अध्यात्मज्ञानसम्बन्धी सनतसुजातपर्व्व (५२), आगे यानसन्धिपर्व्व (५३), तिसके पश्चात् भग-वद्यानपर्व्व, जिस में मातलीका उपाख्यान, गालवचरित, श्रीमहाराज कृष्णचन्द्र का सभा-प्रवेश और विदुलापुत्रशासन वर्णित हुए हैं (५४), तब श्रीकृष्णचन्द्र और महानुभव कर्णका वादाविवादपर्व्व (५५), तिसके पश्चात् कुरु-पाण्डवों का सैन्यनिर्याणपर्व्व (५६) अनन्तर रथातिरथ संख्यापर्व्व (५७), आगे क्रोध वृद्धि करने वाला उलूकदूताभिगमनपर्व्व (५८) तिसके पश्चात् अम्बोपाख्यानपर्व्व (५९), अनन्तर आश्चर्य भीष्माभिषेकपर्व्व (६०), आगे जम्बु-द्वीपसन्निवेशपर्व्व (६१), अनन्तर द्वीपविस्तारके कीर्तन-युक्त भूमिपर्व्व (६२), तब भगवद्गीता-पर्व्व (६३) तिसके पश्चात् भीष्मवधपर्व्व (६४) अनन्तर द्रोणाभिषेकपर्व्व (६५), तब संसप्तक-वधपर्व्व, (६६), आगे अभिमन्युवधपर्व्व (६७), अनन्तर प्रतिज्ञापर्व्व (६८), तब जयद्रथवधपर्व्व (६९) तिसके पश्चात् घटोत्कचवधपर्व्व (७०), अनन्तर लोमहर्षणपर्व्व (७१) आगे नारायणा-स्त्रत्यागपर्व्व (७२), तिसके पश्चात् कर्णपर्व्व (७३), अनन्तर शल्यवधपर्व्व (७४), तब ह्रदप्रवेशपर्व्व (७५), तिसके पश्चात् गदायुद्धपर्व्व (७६) अनन्तर सारस्वत तीर्थवंशानुकीर्त्तनपर्व्व (७७), तिसके पश्चात् अतिवीभत्स सौप्तिकपर्व्व (७८), आगे अति कष्टदायी ऐषीकपर्व्व (७९), तिसके पश्चात्

जलप्रादानिकपर्व्व (८०), अनन्तर स्त्रीविलापपर्व्व (८१) तब कौरवों का और्द्धदैहिकश्राद्धपर्व्व (८२) तिसके पश्चात् ब्राह्मण-वेशधारी चार्व्वाक-राक्षस का वधपर्व्व (८३) अनन्तर धीमान् धर्म्मराजका अभिषेचनिकपर्व्व (८४), तब गृह-विभागपर्व्व (८५), तिसके पश्चात् शान्तिपर्व्व (८६), तब राजधर्म्मानुशासनपर्व्व (८७), अनन्तर आपद्धर्म्मपर्व्व (८८), तब मोक्षधर्म्मपर्व्व, जिसमें शुक प्रश्नाभिगमन, ब्रह्मप्रश्नानुशासन, दुर्व्वासाजी का प्रादुर्भाव और मायाके साथ कथोपकथन हैं (८९), तिसके पश्चात् आनुशासनिकपर्व्व, जिसमें धीमान् भीष्मजीका स्वर्गारोहण वर्णित हुआ है (९०) तब सर्व्वपापनाशी आश्वमेधिकपर्व्व (९१), तिसके पश्चात् आध्यात्मसम्बन्धी अनुगीतापर्व्व (९२), अनन्तर आश्रम वासिकपर्व्व (९३) तब पुत्रदर्शनपर्व्व (९४) तिसके पश्चात् नारदागमनपर्व्व (९५), अनन्तर अतिकष्टदायी मौषलपर्व्व (९६), आगे महाप्रास्थानिकपर्व्व (९७) तिसके पश्चात् स्वर्गारोहणिक पर्व्व (९८) अनन्तर खिलनामक हरिवंशपर्व्वके अन्तर्गत विष्णुपर्व्व, जिसमें शिशुचर्य्या और श्रीकृष्ण से कंसवध होना वर्णित हुए हैं (९९) तब अति आश्चर्य भविष्यपर्व्व (१००)। इन सौ पर्व्वों को महात्मा व्यासदेव कीर्त्तन कर गये हैं। सूतवंशी लोमहर्षणपुत्र नैमिषारण्यमें संक्षेप क्रमानुसार जो अठारह पर्व्व कह गये हैं, भारत के वही संक्षिप्त पर्व्वसंग्रह कहे जाते हैं।

पौष्य, पौलोम, आस्तीक, आदिवंशावतरण, सम्भव, जतुगृह दाह, हिड़िम्बवध, बकवध चैत्ररथ, द्रौपदीका स्वयम्वर, वैवाहिक, विदुरागमन, राज्यलाभ, अर्ज्जुन का वनवास, सुभद्राहरण, यौतुकाहरण, खाण्डवदाह, मयदर्शन यह सब आदिपर्व्वमें कथित हुए हैं।

पौष्यपर्व्वमें उतङ्क का माहात्म्यकीर्त्तन है। पौलोमपर्व्वमें भृगुवंश का विस्तार वर्णित हुआ है। आस्तीकपर्व्वमें गरुड़ और सम्पूर्ण सर्पों की उत्पत्ति औ समुद्रमथन, उच्चैश्रवाकी उत्पत्ति और महाराज परीक्षित-पुत्रके सर्पयज्ञानुष्ठान के कालमें भरतवंशी महात्मावर्ग-सम्बन्धी महाभारतकी कथा वर्णित हुई हैं।

सम्भवपर्व्वमें राजगण तथा दूसरे वीरगण और महर्षि द्वैपायनकी भिन्न भिन्न प्रकार की उत्पत्ति; देवताओं का अंशावतार; दैत्य-दानव, यक्ष, सर्प गन्धर्व्व, पक्षी और दूसरे नाना प्राणियों की उत्पत्ति और जिन महाराज भरतके नामानुसार भारतवंश लोक में प्रसिद्ध हुआ है, जिन्होंने महातपस्वी महर्षि कण्वके आश्रय में दुष्मन्तके औरस से शकुन्तलाके गर्भमें जन्म लिया था, उनका वृत्तान्त; राजा शान्तनुके गृहमें गङ्गा के गर्भमें महानुभाव वसुओंकी उत्पत्ति, पुनः स्वर्गारोहण और तेजोभावापत्ति; भीष्मका जन्म और उनका राज्यत्याग, ब्रह्मचर्य्यावलम्बन तथा प्रतिज्ञा पालन; भीष्मके द्वारा चित्राङ्गदकी रक्षा और चित्राङ्गदके मारे जाने पर उसके कनिष्ठ सहोदर विचित्रवीर्य्य की रक्षा और उसकी राज्यमें स्थापन; अनीमाण्डव्य के शाप से धर्म्मकी नरयोनि में उत्पत्ति वरदान के बलसे कृष्णद्वैपायनजी से धृतराष्ट्र और पाण्डुका जन्म, और पाण्डवोंकी उत्पत्ति; पाण्डवों की वारणावत में भेजने के बारेमें दुर्य्योधन की मन्त्रणा और उससे पाण्डवों के समीप पुरोचन का भेजा जाना; हित करनेके लिये पथ में विदुर का म्लेच्छभाषा में धीमान् धर्म्मराज के प्रति उपदेश; विदुर के वाक्यसे सरङ्ग खोदा जाना, पांच पुत्रों के सहित व्याधपत्नी और पुरोचन का जल मरना; घने वन में पाण्डवों की राक्षसी हिड़िम्बा से भेंट और भीम से हिड़िम्बका मारा जाना, घटोत्कच की उत्पत्ति; पाण्डवों की अति तेजस्वी महर्षि वेदव्यासजी से भेंट और उनकी आज्ञा से एकचक्रा नगरी में ब्राह्मण के घर उनका अज्ञात वास; राक्षसबकका वध और यह देखकर

नगरवासियों का विस्मय; द्रौपदी और धृष्टद्युम्न का जन्म; ब्राह्मणों से द्रौपदीके स्वयम्बर की वार्त्ता सुनकर कौतूहली हो करके श्रीव्यासजी की आज्ञासे पाण्डवों का द्रौपदी लाभ की आशासे स्वयम्बर देखनेकेलिये पाञ्चाल देशकी ओर जाना; गङ्गाकिनारे अङ्गारपर्ण्ण गन्धर्व्व को जयकर उससे अर्ज्जुन की मित्रता और उसके मुखसे तपती, वसिष्ठ और और्व्वका सुन्दर उपाख्यान सुनना; पाण्डवों का पाञ्चालनगरमें जाना; वहां सम्पूर्ण राजाओं के बीच में लक्ष्यको भेदकर अर्ज्जुन का द्रौपदीलाभ, और उस हेतु युद्ध उभड़ने पर, भीमसेन और अर्ज्जुन से शल्य, कर्ण और दूसरे क्रोधसे अन्धे नरेशों की पराजय; भीमार्ज्जुन के उस असाधारण अपरिमित वीर्य्यको देखकर इस समझ से, कि ये पाण्डव हैं, मिलने के लिये भार्गव के घरमें अति बुद्धिशाली श्रीबलरामजी और श्री कृष्णचन्द्र का जाना; द्रौपदीके पांच पति होने की बात सुन कर राजा द्रुपद का विषाद; तिसपर पांच इन्द्रोंका अति आश्चर्य्य उपाख्यान कहा जाना; द्रौपदी का दैवी अमानवी विवाह; धृतराष्ट्र द्वारा पाण्डवों के निकट विदुर का प्रेषित होना; विदुर का पहुंचना और श्रीकृष्णचन्द्र का दर्शन। पाण्डवों का खाण्डवप्रस्थ में बसना और आधा राज्य शासना; श्री नारद जीकी आज्ञासे पांचों भाईका द्रौपदी से नियम करना; सुन्द और उपसुन्दका उपाख्यान; युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ जिस निराले गृह में बिराज रहे थे, उस गृह में ब्राह्मण के उपकारार्थ जा करके अस्त्र लाकर विप्रवर की गौ उद्धार कर नारद-कृत नियम रक्षाके लिये वीरवर अर्ज्जुनका वनको जाना; पार्थ के वनवास-कालमें पथमें नागकन्या उलूपी से सङ्गम और पुण्यतीर्थ को जाना; बभ्रुवाहनका जन्म; तपस्वी ब्राह्मणके शापसे ग्राह-योनि में जन्मी हुई पांच सुन्दरी अप्सराओं का अर्ज्जुन-द्वारा शापसे मुक्त होना; प्रभासतीर्थ में श्रीकृष्णचन्द्र से अर्ज्जुन का मिलाप; द्वारकाजी में श्रीकृष्णकी सम्मति से काम-यान पर अर्ज्जुन का अभिलाषा-रखती हुई सुभद्रा को हरलेना; देवकीनन्दन श्रीकृष्णचन्द्र का दहेज-सहित खाण्डव-प्रस्थ में गमन; सुभद्रा के गर्भ में तेजोवन्त अभिमन्यु का जन्म; द्रौपदी के पुत्र होना; श्रीकृष्ण और अर्ज्जुन के जल-विहार के लिये यमुनाजीमें जाने पर वहां चक्र और चाप मिल जाना; खाण्डवदाह; मय-दानव और सर्प की अग्नि से रक्षा; शार्ङ्गी के गर्भ में मन्दपाल नामक महर्षिका पुत्र उपजाना; यह सब वृत्तान्तभरा आदिपर्व्व पहिले कहा गया है। भगवान् तेजोवान् महात्मा महर्षि वेदव्यास ने इस पर्व्व में दो सौ सत्ताइस अध्यायों की संख्या लगाई है; और इसमें आठ सहस्र, आठ सौ, चौरासी श्लोक कीर्त्तन किये गये हैं।

अनेक वृत्तान्त-वाले दूसरे पर्व्व का नाम सभापर्व्व है; पाण्डवों का सभा-निर्म्माण; किङ्कर दर्शन; देवलोक देखने-वाले श्रीनारदजी का लोकपालों की सभा वर्णन; राजसूय यज्ञका प्रारम्भ; जरासन्धवध; गिरिदुर्ग में कैद भोगते हुए राजाओं का श्रीकृष्ण से मुक्त होना; पाण्डवों की दिग्विजय; राजसूय महायज्ञ में राजाओं का भेंट-सहित आना; अर्घ देने के बारे में वादाविवाद होने के समय शिशुपाल-वध; यज्ञका ऐश्वर्य्य देखकर दुःख और ईर्षा-युक्त हुए दुर्य्योधन की भीम से सभाके बीच में हंसी होनी; उससे दुर्य्योधन का क्रोध होना और जूए का अनुष्ठान; कपटी शकुनि से चौसर में धर्म्मपुत्र युधिष्ठिर की हार; समुद्रमें डूबी हुई नावकी भांति चौसर-रूपी समुद्रमें डूबी हुई परम दुःखिनी पुत्रवधू द्रौपदी का महाप्राज्ञ धृतराष्ट्र से उद्धार। यह देखकर फिर चौसर खेलने के लिये दुर्य्योधन का

पाण्डवों को बुलाना। उसमें जय पाये हुए दुर्य्योधन से पाण्डवों का वन को भेजा जाना। महात्मा व्यासजी ने सभापर्व्व में इन विषयों का वर्णन किया है। हे श्रेष्ठ द्विजो! इस पर्व्व में अठत्तर अध्याय और दो सहस्र, पांच सौ, ग्यारह श्लोक विद्यमान हैं।

इसके पश्चात् अरण्यक नामक बड़ा भारी तीसरा पर्व्व है। महात्मा पाण्डवों के वन को सिधारने पर धीमान् धर्म्मपुत्रके पीछे नगरवासियोंका जाना। अनुगत ब्राह्मणोंके पोषणार्थ श्रीमहाराज धौम्यमुनि के उपदेश-अनुसार महानुभव युधिष्ठिर की अन्न और औषधि के लिये सूर्य्य-नारायण से प्रार्थना। सूर्य्यदेव की कृपासे अन्नपाना। धृतराष्ट्र से हित कहनेवाले विदुरजी का निकाला जाना। उनका पाण्डवों के समीप पहुंचना और धृतराष्ट्र की आज्ञा से फिर लौट आना। कर्णके उपहास वाक्य पर वानवासी पाण्डवोंकी हत्याके लिये दुर्म्मति दुर्य्योधन की युक्ति। उस दुष्टभाव को समझकर श्री महाराज व्यासजी का शीघ्र आगमन और दुर्य्योधन को वनकी ओर जाने से रोकना। सुरभि का उपाख्यान। मैत्रेय का हस्तिनापुर में आगमन और धृतराष्ट्र को उपदेश करना तथा दुर्य्योधन को शाप देना। युद्धमें भीमसेनसे किर्म्मीर का वध होना। यह सुनकर, कि शकुनि ने धूर्तता से पाण्डवों को जय कर लिया है, वृष्णि और पाञ्चालों का युधिष्ठिर के निकट जाना; अर्ज्जुन द्वारा क्रोधयुक्त श्रीकृष्ण का क्रोध शान्त होना। श्रीकृष्ण के निकट द्रौपदी का दुःख। दुःखिता द्रौपदी को श्रीकृष्ण का समझाना। सौभवध का उपाख्यान। श्रीकृष्ण से पुत्र सहित सुभद्रा का द्वारकाजीमें भेजा जाना। धृष्टद्युम्न का द्रौपदी के पुत्रों को पाञ्चाल देश में लेजाना। पाण्डवों का रमणीय द्वैतवन में प्रवेश। युधिष्ठिर, भीम और द्रौपदी का वार्त्तालाप। पाण्डुपुत्रों के समीप महर्षि वेदव्यासजीका आगमन और युधिष्ठिर को स्मृतिनामक विद्यादान। श्रीव्यासजी के चले जाने पर पाण्डवों का काम्यक-वन में प्रवेश। दिव्यास्त्र लाभ करने की चेष्टा में अपरिमित तेजस्वी अर्ज्जुन का प्रवास। व्याधरूपी महादेवके सङ्ग अर्ज्जुन का युद्ध। अर्ज्जुन का लोक-पाल-दर्शन, अस्त्रप्राप्ति और अस्त्रशिक्षाके लिये महेन्द्रलोक में गमन। उसबात को सुनकर धृतराष्ट्र की अतिचिन्ता। युधिष्ठिर का परमार्थ-ज्ञानी बृहदश्व नामक महर्षि-दर्शन। उनके समीप अति कातर होकर युधिष्ठिर का परिताप और विलाप। धर्म्म और करुणारसभरा नलोपाख्यान, जिसमें नलवृत्तान्त और विपत्कालमें भी दमयन्ती के मर्य्यादापालने की कथा कही गई है। महर्षि बृहदश्व से युधिष्ठिर का अक्षहृदय नामक विद्या पाना। पाण्डवों के समीप स्वर्ग से लोमश ऋषिका आना और वनवासी महानुभव पाण्डवों को स्वर्ग में विराजते हुए अर्ज्जुन का समाचार सुनाना। अर्ज्जुन का समाचार सुनकर पाण्डवों की तीर्थ-यात्रा। तीर्थ-यात्रा के फल और पुण्यकीर्त्तन। महर्षि नारदजी की पुलस्त्य तीर्थ की यात्रा और महानुभव पाण्डवों का भी उसही तीर्थमें गमन। कुण्डल देकर कर्ण का इन्द्रकी प्रार्थना पूरी करना। गयासुर का यज्ञ। अगस्त्य का उपाख्यान और वातापि-भक्षण। सन्तान के निमित्त अगस्त्य ऋषि का लोपामुद्रा नाम कन्या से विवाह। कौमार ब्रह्मचारी ऋष्यशृङ्गजीका चरित्र। जमदग्नि-पुत्र महावीर्य्य परशुरामजीका चरित्र। कार्त्तवीर्य्य-वध। हैहयवध। प्रभास तीर्थमें वृष्णियों के साथ पाण्डवों का मिलाप। सुकन्याका उपाख्यान। शर्य्याति के यज्ञ में भृगुवंशी च्यवन मुनि का दोनों अश्विनीकुमारों को यज्ञीय सोमरस देना। अश्विनीकुमारों का च्यवनमुनिको यौवनावस्था में स्थापन करना। मान्धाताका

उपाख्यान। जन्तुनामक राजपुत्र का उपाख्यान सोमकराज का अनेक पुत्र पानेके लिये पुत्र को मारकर याग करना और सौ पुत्र पाना। श्येन-कपोतका मनभावन उपाख्यान। इन्द्र, अग्नि और धर्म्म से शिविराजाकी परीचा। अष्टावक्र का उपाख्यान। जनकराज के यज्ञ में नैयायिकवर वरुणपुत्र वन्दी के साथ विप्रर्षि अष्टावक्र का वादाविवाद। महाप्रभावी अष्टावक्र के साथ विवाद में वन्दी की पराजय। जय लाभ करके अष्टावक्र का समुद्र में डूबे हुए कहोड़ नामक निज पिता का उद्धार करना। यवक्रीत की कथा। महानुभव रैभ्य की कथा। पाण्डवों की गन्धमादन पर यात्रा। वहां रहने के काल में सुगन्धी पदार्थ बटोरने के लिये द्रौपदी से नियुक्त होकर महाबली भीमसेन की पथ में कदली वनके भीतर अति बलशाली पवननन्दन हनुमानजी से भेंट। भीम का पद्मवन बिगाड़ना और वहां राचस और मणिमत् आदि महावीर्य्य यचों के साथ घोर युद्ध। वृकोदरसे जटासुर नामक राचस का वध होना। वृषपर्व्व नामक राजर्षि के समीप पाण्डवोंका गमन। पाण्डवों का आर्ष्टिसेनाश्रम में गमन और वास। पाञ्चाली का महानुभव भीम को उत्साह देना। भीम का कैलाश पर चढ़ जाना और महाबलशाली मणिमत् आदि यचों से घोर युद्ध। पाण्डवों के साथ कुवेरजी-का मिलाप। भाइयों से अर्ज्जुन का मिलाप। दिव्यास्त्र पाये हुए सव्यसाची अर्ज्जुन से इन्द्रजी के कार्य्य के लिये हिरण्यपुरवासी निवातकवच नामक देवशत्रु भयानक दानवों और पुलोमपुत्र कालकेयों का घोर युद्ध और पार्थ से उनका माराजाना। महाराज युधिष्ठिर को अर्ज्जुन का अस्त्र दिखाने का उद्योग और देवर्षि नारदजी का अस्त्र दिखाने से रोकना। पाण्डवों का गन्धमादन से उतरना। उस बड़े वन में पर्व्वतके-समान-शरीर-धारी प्रबल सर्प-का भीमको निगल जाना; प्रश्नके अर्थ कह कर युधिष्ठिर का भीम को उद्धार करना। महात्मा पाण्डवों का फिर काम्यकवन में आगमन। पुरुष-श्रेष्ठ पाण्डवों को फिर देखने के लिये वासुदेव का काम्यकवन में आना। मार्कण्डेय-समास्या-घटित अनेक भांति की कथा। उस महर्षिसे वेणुपुत्र पृथुराजा का उपाख्यान कहाजाना। महानुभव तार्च्य ऋषि और सरस्वतीजी की कथा। मत्स्योपाख्यान। मार्कण्डेय-समस्या और पुरावृत्तोंका कीर्त्तन। इन्द्रदुम्न का उपाख्यान। धुन्धुमारका उपाख्यान। पतिव्रता का उपाख्यान। अङ्गिराका उपाख्यान। द्रौपदी और सत्यभामा का सम्वाद। पाण्डवों का पुन: द्वैतवन में प्रवेश। घोषयात्रा और उसमें गन्धर्वों से दुर्य्योधन का बांधाजाना अर्ज्जुन के द्वारा लज्जायुक्त मन्दबुद्धि दुर्य्योधन का गन्धर्वों से मुक्तहोना। युधिष्ठिर का स्वप्न-में मृग देखना और फिर काम्यकवन में आना। व्रीहिद्रौणिकका बड़ा भारी उपाख्यान। दुर्वासा जी की कथा। आश्रमसे जयद्रथ का द्रौपदी को हरलेना और भीमसेन का वायु के समान उसके पीछे जाना; महाबली भीम का जयद्रथ को पांचशिखाधारी बनाना; महाराज रामचन्द्र जी की बड़ी भारी कथा, जिसमें श्रीराम चन्द्रने युद्ध में बड़े विक्रम से रावण को मारा था; सावित्री की कथा; इन्द्र जी के उद्देश में कर्णका दोनों कुण्डल त्याग देना और उससे प्रसन्न होकर इन्द्रजी का कर्ण को एक पुरुष मारने वाली शक्ति देना; अरणीय उपाख्यान; धर्म्म द्वारा निज पुत्र का अनुशासन; वरलाभ के पश्चात् पाण्डवों का पश्चिम दिशा को जाना; यह सब विषय-युक्त आरण्यक नामक तीसरा पर्व्व वर्णित हुआ है। इसमें दो सौ उनहत्तर अध्याय और ग्यारह सहस्र, आठ सौ, चौसठ श्लोक कीर्त्तन किये गये हैं।

इसके पश्चात् विराटपर्व्व का व्योरा सुनिये; विराट नगर में जाकर श्मशान के बीचमें बड़े भारी समीवृक्ष को देख करके उस पर पाण्डवों का अस्त्र रखना; पुर में प्रवेश कर उनका गुप्त भावसे रहना; दुराचारी कामी कीचककी पाञ्चालीसे सम्भोग की प्रार्थना और भीमसे उसका वध। पाण्डवों के अन्वेषण के लिये नरेश दुर्य्योधन का चारों ओर चतुर दूत भेजना और पाण्डवों की टूंट निकालने में उन दूतों की अक्षमता; पहिले त्रिगर्त्त की सेना का विराट-राज की गौ हरना और उनसे विराट-राजका लोमाञ्च करने-वाला घोर युद्ध; त्रिगर्त्त से पकड़े गये हुए विराट का भीम से मुक्त होना और पाण्डवों का गौ फेरलेना; कौरवों का गौ हरलेना; अर्ज्जुन के युद्ध में सम्पूर्ण कौरवों की पराजय; किरीटि का विक्रम-पूर्व्वक गौ फेर लेना; सुभद्रा के पुत्र, शत्रुनाशी अभिमन्यु की पत्नी और पार्थ की पुत्रवधू करने के लिये विराटका अपनी उत्तरा नाम कन्यादान; यह सब विषययुक्त विराट नामक चौथापर्व्व विस्तारपूर्व्वक कहा गया है। इस पर्व्व में सरसठ अध्याय हैं और वेदज्ञ महर्षि व्यासजीने इस में दो सहस्र पचास श्लोक कीर्त्तन किये हैं।

इसके अनन्तर विशेष रूपसे जानने योग्य उद्योगनामक पांचवेंपर्व्व को श्रवण कीजिये। पाण्डवों के जयकी इच्छासे उपप्लव्य नाम स्थान में रहने के समय दुर्य्योधन और अर्ज्जुन का वासुदेवजीके पास जाना और उनके ऐसी प्रार्थना करने पर, कि "आप उपस्थित युद्ध में हमारी सहायता कीजिये" महामति श्रीकृष्ण का इससे यह कहना, कि "हे श्रेष्ठ पुरुष युगल! युद्ध न करके केवल युक्तिमात्र देनेवाला मैं और एक अक्षौहिणी सेना, इन दो में किसको क्या दूं?" अभागे कुमति दुर्य्योधन का सेनाका वर मांगना और अर्ज्जुन का युद्ध से दूर रहनेवाले श्रीकृष्ण को मन्त्रणा-कार्य्य में नियुक्त कर लेना। मद्रराज पाण्डवों के निकट आ रहे थे, कि ऐसे समयमें दुर्य्योधनका समाचार पाकर उनके पास पहुंचना और उनसे उपहार देकर सन्तुष्ट करने पर वह जब वर देने को उद्यत हुए, तब उपस्थित युद्ध में सहायता की प्रार्थना करना और मद्रराज शल्य का सहायता देना स्वीकार कर पाण्डवों के समीप जाना; शल्य का युधिष्ठिर को समझाना और इन्द्रकी विजय वर्णन करना; पाण्डवों का कौरवोंके समीप पुरोहित भेजना, उससे इन्द्रकी विजय सम्बन्धी कथा सुन कर शान्ति चाहनेवाले महा प्रतापी धृतराष्ट्र का विदुर की मन्त्रणा से सञ्जय नामक दूतका भेजना; वासुदेव और पाण्डवों का वृत्तान्त सुनकर चिन्ता से धृतराष्ट्र का निद्रा त्याग देना; विदुरके मुखसे बुद्धिमान धृतराष्ट्र का विचित्र और हितवाक्य सुनना; मनःपीड़ासे पीड़े जाते हुए शोकाकुल धृतराष्ट्रका सनत् सुजात ऋषि से अति उत्तम अध्यात्म-सम्बन्धी शास्त्र सुनना; प्रातःकाल में सञ्जय से वासुदेव और अर्ज्जुन का ऐकात्मभाव का विषय कहा जाना; महामति और कृपावान् श्रीकृष्ण का सन्धिस्थापन करने को आगमन; दोनों पक्ष की हितेच्छा से श्रीकृष्णचन्द्र के सन्धि-स्थापन का प्रस्ताव करने पर दुर्य्योधन का उस बातको टार देना; दम्भोद्भवका उपाख्यान; महात्मा मातली का अपनी दुहिता के लिये वर ढूंढ़ना। महर्षि गालव चरित्र; विदुला पुत्र का उपदेश; कर्ण और दुर्य्योधन आदिकी दुष्ट मन्त्रणा को समझ कर राजगण के समीप श्रीकृष्णका अपना योगेश्वर-भाव दिखाना; श्रीकृष्णका कर्ण को अपने रथ पर चढ़ाना और हित परामर्श देना; मदगर्व्वित कर्ण का कौशलपूर्व्वक श्रीकृष्ण की हितबातको अस्वीकार करना; हस्तिनापुर से उपप्लव्यनगरमें पाण्डवों के निकट

आकर श्रीकृष्णका सारा वृत्तान्त कहना; श्रीकृष्णसे सब बातोंको सुन कर, हित कार्य्य की युक्ति ठहरा करके पाण्डवों की युद्धकी तय्यारी; हस्तिनापुर से युद्ध के लिये हाथी, घोड़े, रथ और पैदल की यात्रा; सैन्यसंख्या; घोर युद्धके पूर्व्वदिन दुर्य्योधनका उलूक नामक मनुष्य को दूत नियुक्त कर पाण्डवोंकी सेवामें भेजना; रथ अतिरथीकी संख्या; अम्बोपाख्यान; उद्योग नामक पांचवें पर्व्वमें सन्धि-विग्रहकी बातोंमें मिले हुए यह सब वृत्तान्त वर्णित हुए हैं। हे तपोधन! उदारचित्त महानुभाव महर्षि वेदव्यास ने इस पर्व्वमें छः सहस्र छः सौ, अट्ठानवे श्लोक कीर्त्तन किये हैं।

अब अत्याश्चर्य्य भीष्मपर्व्व की कथा कहता हूं। जम्बूखण्ड निर्म्माण करने की कथा; युधिष्ठिर की सेना में बड़ी उदासी; दश दिनों तक ठहरी हुई कठोर लड़ाई के समय में योग सम्बन्धी नाना हेतुओंको दिखा कर महामति वासुदेव का अर्ज्जुन की उदासी को दूर करना; युधिष्ठिर के हितेच्छुक उदारचित्त स्वयं श्रीकृष्ण का रथसे उतर कर निर्भयचित्त से हाथ में प्रतोद लेकर भीष्म-वधार्थ गमन; वाक्य रूपी दण्डसे श्रीकृष्णका अर्ज्जुनको आघात करना; सर्व्वशास्त्रों में पारङ्गत गाण्डीवचापधारी अर्ज्जुन का शिखण्डी को सामने रख कर तेज बाणों के आघात से भीष्म को रथ से भूमि पर गिराना; भीष्म का शरशय्या पर शयन; इन सब वृत्तान्तोंसे भरा हुआ भीष्मपर्व्व नामक अति विस्तृत भारतीय छठवांपर्व्व वर्णित हुआ है। वेदवेत्ता वेदव्यास ने इस पर्व्वमें एक सौ सतरह अध्याय और पांच सहस्र, आठ सौ, चौरासी श्लोक कीर्त्तन किये हैं।

अनन्तर बहुवृत्तान्त युक्त अति आश्चर्य्य द्रोण-पर्व्व कहता हूं;—प्रतापी द्रोणाचार्य्य का सेनापति के पदमें अभिषिक्त होना; दुर्य्योधन की प्रीति के निमित्त बड़े भारी अस्त्रज्ञ द्रोणाचार्य्यजी का यह कहकर कि "धीमान् युधिष्ठिरको पकड़ लाऊंगा" प्रतिज्ञा करना। संसप्तक युद्ध-स्थल से अर्ज्जुनका खदेड़ा जाना, महाराज भगदत्त का सुप्रतिक नामक अपने हाथी पर रणस्थल में इन्द्रतुल्य अतुल विक्रम प्रकाश करना; अर्ज्जुन से भगदत्त का मारा जाना; जयद्रथ आदि महारथी योद्धाओं से महाबली अप्राप्त-यौवन अकेले बालक अभिमन्यु का वध होना; अभिमन्यु के मारे जाने पर क्रोध से जले हुए अर्ज्जुन का रणभूमि में सात अक्षौहिणी सेनाओं को मार कर मद्रराज जयद्रथ को मार डालना; महाराज युधिष्ठिर की आज्ञा से पार्थको ढूंढ़ निकालने के लिये महाभुज भीम और महारथी सात्यकि का देवताओंके पार होने के अयोग्य कुरुसैन्य में घुसना; शेष संसप्तकों का युद्ध में नाश; अलम्बुष श्रुतायु: जलसन्ध, वीर्य्यशाली भूरिश्रवा, विराट, महारथी द्रुपद और घटोत्कच आदि अनेक वीरों का पतन; युद्ध में द्रोणाचार्य्यजी के गिरने पर क्रोध से जले हुए अश्वत्थामा का भयानक आग्नेय नारायणास्त्र मारना; उत्तम रूपसे रुद्र-माहात्म्य का कीर्त्तन; श्रीमहाराज व्यासदेव का आगमन; श्रीकृष्ण और अर्ज्जुन का माहात्म्य वर्णन; यही सब विषय सविस्तार सातवें पर्व्वमें कहे गये हैं। जिन सब पुरुष-श्रेष्ठ भूपालोंका निर्द्देश है, उनमें प्रायः सभीके मृत्यु-वृत्तान्त इस पर्व्व में वर्णित हुए हैं। तत्त्वदर्शी पाराशरि व्यासजीने विचार-पूर्व्वक इस पर्व्व में एक सौ सत्तर अध्याय और आठ सहस्र, नौ सौ, नौ श्लोक कीर्त्तन किये हैं।

इसके पश्चात् परम अद्भुत कर्णपर्व्व कहता हूं। धीमन्मद्रराज का सारथी के कार्य्य में नियुक्त होना; युद्धार्थ यात्रा करने के काल

में कर्ण और मद्रराज के बीच में परस्पर वाक्ययुद्ध; कर्णके तिरस्कारार्थ शल्यका हंस और काककी कथा कहना; महाप्रभावी अश्वत्थामा से पाण्ड्यराज का माराजाना; दण्डसेनवध और दण्डवध; सर्व्वचापधारी जनो के सम्मुख कर्णसे द्वैरथयुद्ध करने में धर्म्मराज युधिष्ठिर का प्राण जाने पर होना; युधिष्ठिर और अर्ज्जुनका आपसमें क्रोध करना; श्रीकृष्णाका अर्ज्जुनसे विनय; वृकोदर का युद्धस्थलमें पूर्व्व-प्रतिज्ञा के अनुसार दुःशासन की छाती चीर कर शोणित पीना; द्वैरथ युद्धमें अर्ज्जुन से महारथी कर्णका मारा जाना; यही सब विषय महाराज व्यासजीने आठवां पर्व्व में कहे हैं। वेदव्यासजी ने इस कर्णपर्व्व में उनहत्तर अध्याय और चार सहस्र, नौ सौ, चौसठ श्लोक कीर्तन किये हैं।

इसके अनन्तर विचित्र अर्थयुक्त शल्यपर्व्व कहता हूं। कर्ण के मारे जाने पर मद्रेश्वर शल्य का सेनापति के पद में नियुक्त होना; नाना रथियों के पृथक्रूप से रथ-युद्धों का वर्णन; कौरव-पक्षके प्रधान योद्धों का मारा जाना; महानुभव धर्म्मराज से शल्यका वध होना; अधिक सेना मारी गई और स्वल्प बाकी रही देखकर दुर्य्योधन का ह्रद में घुसना और जलस्तम्भ रचके वहां ठहरना; व्याधों का भीम को दुर्य्योधनका समाचार देना; धीमान् धर्म्मराज युधिष्ठिर के लाञ्छन से क्रोधी दुर्य्योधन का झील से बाहर निकल आना; जहां पर भीमके साथ दुर्य्योधन का गदायुद्ध होनेवाला था; वहां सबोंके एकत्रित होने पर बलरामजी का आगमन; सरस्वती तीर्थ और दूसरे नाना तीर्थों का माहात्म्य कीर्त्तन; उस रणभूमिमें भीमके साथ दुर्य्योधन का घोर गदा-युद्ध; युद्धस्थल में अति वेगवती गदा से भीम का महाराज दुर्य्योधन के दोनों उरु भग्न करदेना; यह सब विषय आश्चर्य्य अर्थयुक्त नवें पर्व्व में वर्णित हुए हैं। कौरवों के यशःकीर्त्तन करने वाले व्यासमुनि ने इसमें नाना वृत्तान्त-युक्त उनसठ अध्याय कीर्त्तन किये हैं। और तीन सहस्र, दो सौ, बीस श्लोक रचे हैं।

इसके पश्चात् दुःखदायी सौप्तक पर्व्व कहता हूं। पाण्डवों के रणस्थल से चले जाने पर क्रोधी दुर्य्योधन जिन स्थान में पड़ा था, वहां सन्ध्याके समय कृतवर्म्मा, कृपाचार्य्य और अश्वत्थामा, इन तीन महारथियों ने उपस्थित होकर देखा, कि राजा दुर्य्योधन के उरु भग्न हुए हैं और सर्व्वशरीर में रुधिरयुक्त होकर वह रणभूमि में पड़ा है, इससे महारथी द्रोणपुत्रने क्रोधसे जलकर यह प्रतिज्ञा की, कि "धृष्टद्युम्न आदि पाञ्चाल और सहचर समेत पाण्डवों को न मार कर तनुत्राण (जिरह-बक्तर) नहीं छोड़ूंगा"। अनन्तर उन तीन महारथियोंने राजा से यह प्रतिज्ञावचन कहकर वहां से पधारे और सूर्य्यास्त होने पर एक बड़े वन में प्रवेश पूर्व्वक वहां एक बड़े वड़ की जड़में बैठकरके देखा, कि एक उल्लू उसरात्रि कालमें अनेक कौवोंको मार रहा है, उसे देखकर द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने पितृवध की बात स्मरण करके क्रोधवश मनही मनमें यह कल्पना की, कि पाञ्चालों के सो जाने पर सबों को मार-डालूंगा। अनन्तर इन्होंने पाण्डवों के शिविर द्वार पर उपस्थित होकर देखा, कि एक आकाश स्पर्श-कारी बड़ाभारी भयानक आकारधारी राक्षस द्वारके सामने खड़ा है। उस राक्षस को अस्त्र मारने में बाधा देते देखकर द्रोणपुत्र ने तत्क्षण विरूपाक्ष रुद्र की आराधना करके कृप और कृतवर्म्मा के संग शिविर में प्रवेश कर विश्वास पूर्व्वक सोते हुए धृष्टद्युम्न आदि परिवार सहित सम्पूर्ण पाञ्चाल और द्रौपदीके पुत्रों को नाश किया। श्रीकृष्ण के कौशल से इस प्रकारसे केवल महाचाप-

धारी सात्यकि और पांच पाण्डव बचे, शेष सब मारे गये। अश्वत्थामाने अपने हाथ ही से पाञ्चालों को हनन किया था। धृष्टद्युम्न के सारथिके इस भयानक विषय को पाण्डवों के निकट कहने पर, पुत्रशोक और पितृ-भ्रातृ-वध से कातर द्रौपदी ने भूखी रहकर प्राण-त्यागने की कल्पना कर पतियों से प्रार्थना की। वीर्य्यवान भीम-पराक्रम भीमसेन द्रौपदी का वचन सुन कर उसकी प्रिय इच्छा पालने को क्रोधवश गदा लेकर अश्वत्थामा के पीछे दौड़े। द्रोणपुत्रने भीम के भय से अभिभूत और दैव प्रेरणा से क्रोध-पूर्व्वक "पृथ्वी अपाण्डवा हो" ऐसा कहकर अस्त्र मारा ; इस पर श्रीकृष्णचन्द्र ने "ऐसा न करो" कहके अश्वत्थामा को रोका। पापात्मा अश्वत्थामा की विद्रोहिता देखकर अर्जुन ने अस्त्र द्वारा उस अस्त्र को निवारण किया, अश्वत्थामा और द्वैपायन आदिने परस्पर शाप दिया। जयश्री पाये हुए पाण्डवों ने महारथी द्रोणपुत्र से मणि लेकर प्रसन्न चित्त होकर उसी द्रौपदी को दिया। यह सब वृत्तान्त-युक्त इस दशवें पर्व्वका नाम सौप्तिकपर्व्व कहा है। वेदवक्ता महात्मा व्यास-मुनि ने इसमें अठारह अध्याय कीर्त्तन किये और आठ सौ सत्तर श्लोक रचे हैं। तेजोवान् व्यासजी ने ऐषिक-पर्व्व को इस पर्व्व के अन्तर्गत किया है।

अनन्तर करुणारसयुक्त स्त्रीपर्व्व कहाजाता है। प्रज्ञा-शील भूपाल धृतराष्ट्र ने पुत्रशोक से कातर होकर भीम का विनाश करने की कामना से कृष्ण की दी हुई भीम की लोहेकी बनी प्रतिमूर्त्ति तोड़ डाली। धीमान् राजा धृतराष्ट्र को शोकसे बहुत ही कातर देखकर बुद्धिमान विदुरने मोक्षसम्बन्धी नाना हेतुवादों से उनकी सांसारिक माया दूरकर ढाड़स दिया और धृतराष्ट्र अन्तःपुरवासिनी सिमन्तिनियों को सङ्ग लेकर शोकाकुल चित्तसे रणस्थल को देखने गये ; वीरों की स्त्रियां अति करुणास्वरसे विलाप करने लगीं। गान्धारी और धृतराष्ट्र को क्रोध और मोह उपस्थित हुआ ; क्षत्रिय-नारियां युद्धमें पीठ न दिखाये हुए शूरवीर पिता, भ्राता और पतियोंको रणमें मरे और गिरे देखने लगीं। पुत्रशोक से कातर होकर गान्धारी के क्रोधयुक्त होने पर श्रीकृष्णने उनका क्रोध शान्त किया। धार्म्मिकवर महाप्राज्ञ राजा युधिष्ठिर ने शास्त्रानुसार युद्ध में मरे राजाओं के शरीर दाह किये। राजाओं को जल देनेकी तर्पण-क्रिया आरम्भ होने पर कुन्तीने गुप्तभावसे जन्मे हुए कर्ण को स्वपुत्र करके प्रकाश किया। प्रज्ञाशील परमऋषि व्यासदेवने घोर शोक उभारी, सज्जन-नेत्र दुखारी, चित्त-विकल-कारी स्त्रीपर्व्व नामक इस ग्यारहवें पर्व्व में सतरह अध्याय कीर्त्तन कर सात सौ सत्तर श्लोक रचे हैं।

इसके पश्चात् ज्ञान-वृद्धिकारी शान्तिपर्व्व नामक बारहवां पर्व्व कहता हूं। इसमें धर्म्म-राज युधिष्ठिर को पिता, भ्राता, कुटुम्ब, मातुल आदि सबोंको मरवा डालने के कारण उदासी हो गई। भीष्मदेवने शरशय्या पर पतित होकरके युधिष्ठिर को तत्व-ज्ञान चाहनेवाले राजाओंके अवश्य जानने योग्य राजधर्म्म सुनाया और उनके द्वारा हेतुदर्शनेवाला आपद्धर्म्म भी प्रकाशित हुआ है। मानवलोग जिसे जान कर सर्व्वज्ञ बनते हैं, वह बहुविस्तृत मोक्ष-धर्म्म भी इसमें भीष्मजी से कहा गया है। ज्ञानियों के प्रिय इस बारहवें पर्व्व का नाम शान्तिपर्व्व है, इसमें तीन सौ, उनतालीस अध्याय है। हे तपोधनो! धीमान् पाराशरि व्यासजी ने इस पर्व्व में चौदह सहस्र, सात सौ, सात श्लोक कीर्त्तन किये हैं।

इसके पश्चात् उत्तम अनुशासन पर्व्व जानिये। कुरुराज युधिष्ठिर भागीरथीपुत्र भीष्मजी से धर्म्मनिर्णय सुन करके अपने स्वाभाविक भावमें

आ गये। इस पर्व्व में धर्म्म और अर्थ सम्बन्धी सम्पूर्ण व्यवहार, विविध दानों के भिन्न भिन्न फल; आचार व्यवहार का निरूपण; सत्यकी पूर्ण उन्नति; गौ-ब्राह्मण का माहात्म्य; देश और काल के भेद से धर्म्मका भेद और भीष्मकी स्वर्गप्राप्ति वर्णित हुई है। इस धर्म्म-निर्णयकारी नाना वृत्तान्त-धारी तेरहवें पर्व्वमें एकसौ छियालीस अध्याय हैं और आठ सहस्र श्लोक रचे गये हैं।

इसके पश्चात् आश्वमेधिक नामक चौदहवां पर्व्व कथित हुआ है। सम्वर्त्त और मरुत्त का सुन्दर उपाख्यान; सुवर्णकोष का पाना; पहिले अस्त्राग्नि से जले और श्रीकृष्णसे फिर प्राण पाये हुए परीक्षित का जन्म; यज्ञ के घोड़े को छोड़ने पर उसके पीछे चलनेवाले अर्ज्जुन से स्थान स्थान में क्रोधी राजाओं का युद्ध; चित्रवाहन राजाकी पुत्री चित्राङ्गदा के गर्भजात निज पुत्र बभ्रुवाहन से अर्ज्जुन का जीवन जाने पर होना; अश्वमेध-महायज्ञ के काल में नकुलीपाख्यान; यह सब विषय अति अद्भुत आश्वमेधिकपर्व्व में वर्णित हुए हैं। तत्व-दर्शी महर्षि ने इस में एकसौ तीन अध्याय कीर्त्तन किये हैं और तीन सहस्र, तीन सौ, बीस श्लोक रचे हैं।

अनन्तर आश्रमवासिक नामक पन्द्रहवां पर्व्व कहा जाता है। इस पर्व्व में गान्धारी सहित राजा धृतराष्ट्र और विदुर राज्य छोड़कर आश्रमवासके लिये वनको सिधारे। वह देख-कर गुरुसेविका सती कुन्ती पधारे हुए धृत-राष्ट्र की अनुगामिनी हुई। वहां राजा धृत-राष्ट्र ने युद्ध में मरे और परलोक को सिधारे हुए पुत्र, पौत्र और दूसरे वीर राजाओं को फिर आते देखा। उन्होंने कृष्णद्वैपायनजी की कृपा से यह उत्तम और अत्याश्चर्य्य व्यापार देख कर गान्धारी के साथ शोक परित्याग करके परम सिद्धि लाभ की। जितेन्द्रिय विद्वान् गवल्गणके पुत्र महात्मा सञ्जय और विदुर ने धर्म्म का आश्रय कर सुगति प्राप्त की। धर्म्मराज युधिष्ठिरने नारदजीके दर्शन कर उनके मुखसे वृष्णियों के कुलक्षय होने की वार्त्ता सुनी। यह सब वृत्तान्त अति अद्भुत आश्रमवासिकपर्व्व में कहे गये हैं। तत्वदर्शी महर्षि ने इस पर्व्वमें बयालीस अध्याय और एक सहस्र, पांच सौ, छः श्लोक रचे हैं।

अनन्तर दुःखदायी मौशलपर्व्वको श्रवण कीजिये। जोलोग रणभूमिमें सहजही में अस्त्र के आघात सहलेते थे, वह सर्व्व पुरुषोंमें श्रेष्ठ यादवगण ब्रह्मशापरूपी दण्ड से पीड़ित होकर दैववश समुद्र-तट पर मदिरा पीनेकी सभा में पानोन्मत्त होकरके परस्पर एरका-तृणरूपी वज्राघात से आहत हुए। इस प्रकार राम, कृष्ण, दोनोंने सम्पूर्ण यदुवंश को नाश कर आपने भी सर्व्वसंहारी काल को लङ्घन नहीं किया। आगे नरश्रेष्ठ अर्ज्जुन द्वारकाजी में आकर और उसे यादवों से खाली पाकर बड़ी मनःपीड़ा से खेदवश हुए। उन्होंने अपने मातुल नर-श्रेष्ठ वसुदेवकी अग्निक्रिया कर सुरापानसभा में युद्धवंशी वीरों का अति-विनाश देखा। आगे उन्होंने बलरामजी, श्री-कृष्णचन्द्र और प्रधान प्रधान यदुवंशियोंके शरीर दाह किये और द्वारकाजीसे बाल, वृद्ध सर्व्व जनों को ले आने के समय पथमें घोर आपद से घेरे जाकर निज गाण्डीवधनुष की पराजय और दिव्यास्त्रों की अप्रसन्नता देखी। आगे उन्होंने यादव-नारियों की चोरी और विक्रम की अनित्यता देख कर बड़े उदास होकर युधिष्ठिर के निकट लौट करके, व्यासजी के वचनानुसार सन्यास-आश्रमकी शरण लेनेकी अभिलाषा की। यह सोलहवां पर्व्व मौशल-पर्व्व करके कहा गया है। तत्वदर्शी वेदव्यास-जीने इस पर्व्वमें आठ अध्याय और तीन सौ, बीस श्लोक कीर्त्तन किये हैं।

इसके पश्चात् महाप्रास्थानिक नामक सत्तरहवां पर्व्व कल्पित है। पुरुषश्रेष्ठ पाण्डवोंने देवी द्रौपदी के सङ्ग राज्य छोड़कर महाप्रस्थान अवलम्बन किया। आगे उन्होंने लाल समुद्रकूल में गमन करके अग्नि का दर्शन किया। उस स्थान में अग्नि की आज्ञासे अर्ज्जुन ने उस महाप्रभावी अग्निकी पूजा कर दिव्य श्रेष्ठ गाण्डीव चाप को चढ़ा दिया। आगे युधिष्ठिर सब भाइयों और द्रौपदी को गिरते देखकर उनकी माया छोड़ किसी की ओर न देख करके अकेले चले गये। इस सत्तरहवें पर्व्वका नाम महाप्रास्थानिक पर्व्व है, इसमें तत्त्वदर्शी महर्षि ने तीन अध्याय और तीन सौ, तेइस श्लोक कीर्त्तन किये हैं।

अनन्तर अमानुषी आश्चर्य्य स्वर्गारोहणपर्व्व जानिये। स्वर्ग से देवयान उपस्थित होनेपर महाप्राज्ञ धर्म्मराज, सदय हृदय से अपने साथी कुत्ते को छोड़कर जाने में सम्मत नहीं हुए। महात्मा युधिष्ठिर की इस प्रकार की अटल धर्म्म-निष्ठा देखकर धर्म्म ने कुत्तेका स्वरूप छोड़कर युधिष्ठिर को दर्शन दिया। युधिष्ठिरके धर्म्मसहित स्वर्गारूढ़ होने पर देवदूत ने छलपूर्व्वक उनको नरक दिखाया; इससे उनको बड़ी कठोर यातना मिली। धर्म्मात्मा युधिष्ठिर ने उस नरक में यमराजके वशीभूत अपने भाइयों का करुणास्वर श्रवण किया। इन्द्र जी और धर्म्मराज दोनों ने युधिष्ठिरको "ऐश्वर्य्य भोगने का यही फल है" ऐसा-कहकर वह सब विषय दिखाये। युधिष्ठिर आकाशस्थित गङ्गाजीके जलमें स्नानपूर्व्वक मानव शरीर छोड़कर देवलोक में अपने धर्म्मसे मिले हुए स्थानको प्राप्त कर देवराज और दूसरे देवताओं के सहित पूजे जाकर परमानन्द भोगने लगे। धीशक्तिमान् व्यासदेवने अठारहवें पर्व्वमें यह सब विषय कहे हैं, हे तपोधनो! महात्मा परमर्षि ने इस पर्व्व में पांच अध्याय और दो सौ नौ श्लोक रचे हैं।

इस प्रकारसे सम्पूर्ण अठारह पर्व्व कहे गये हैं। इसके पश्चात् खिल हरिवंश और भविष्यपर्व्व कीर्त्तित हुए हैं। महर्षि व्यासजीने उस में बारह सहस्र श्लोकोंकी संख्या की है। महाभारत के यह सब पर्व्वसंग्रह कह चुके। अठारह अक्षौहिणी सेना युद्ध करने के निमित्त एकत्र होने पर अठारह दिनों तक अति कठोर युद्ध हुआ था।

जो ब्राह्मण चतुर्व्वेद, वेदाङ्ग और सम्पूर्ण उपनिषत् से ज्ञात हैं, पर महाभारतीय उपाख्यान को नहीं जानते, वह कभी विज्ञ नहीं कहे जा सकते हैं। अपार बुद्धिमान व्यासदेव जीने महाभारत को अर्थशास्त्र, कामशास्त्र और अति-विस्तृत धर्म्मशास्त्र करके निर्द्दिष्ट किया है। जैसे पुंस्कोयल का कूजन श्रवण करके कौवेकी कर्कश बोली सुनने की इच्छा नहीं होती, तैसेही इस उपाख्यान को सुननेसे और कुछ सुनने की अभिलाषा नहीं रहती। जैसे पञ्चभूतों से तीनों प्रकार लोकों की उत्पत्ति होती है तैसेही इस सर्व्वश्रेष्ठ इतिहास से कविल-बुद्धि उपजती है। जैसे जरायुज, अण्डज, स्वेदज, उद्भिज्ज यह चार प्रकार की प्रजा आकाश में ही रहती हैं, तैसेही सम्पूर्ण पुराण इस उपाख्यानमें हैं। जैसे आश्चर्य्य चित्तक्रिया सब इन्द्रियों का आश्रयरूपी हैं, तैसेही यह उपाख्यान दान, अध्ययन आदि क्रिया और शम, दम आदि गुणों का आश्रयरूपी हुआ है। जैसे भोजन विना शरीर धारण का कोई दूसरा उपाय नहीं है, तैसेही इस उपाख्यान के आश्रय विना भूमण्डल में कोई भी आख्यान विद्यमान नहीं है। जैसे उन्नति चाहनेवाला भृत्य सद्वंशी भूपाल की शरण लेता है, तैसेही श्रेष्ठ कवि-कुल कवित्तशक्तिकी उन्नति के लिये इस महाभारत को आश्रय करते हैं। जैसे कोई दूसरा

आश्रम सदाचारयुक्त गृहस्थाश्रम के समान नहीं हो सकता है, तैसेही किसी कविकृत कोई काव्य इस काव्य के समान नहीं हो सकेगा। सदा उद्योगी बने रहो और धर्म्म में तुम्हारी प्रवृत्ति हो, क्योंकि वह एक धर्म्मही परलोक का मित्र है, अर्थ और स्त्री आदि सब भोगकी वस्तु चतुर जनोंसे भली प्रकार सेवित होनेपर भी कभी अपनी ओर स्थिर नहीं होतीं। महाभाग्यवान् द्वैपायनजी के दोनों होठों से निकले हुए अप्रमेय, परम पवित्र; पापविनाशी परम कल्याण-दायी महाभारत को पाठ करने के समय जो उसे सुनते हैं, उनको पुष्करतीर्थ के जल में नहानेका क्या प्रयोजन है? ब्राह्मण दिनको इन्द्रियों से जो कुछ पाप करते हैं, सध्या को महाभारत का नाम कीर्त्तन करने से उन पापों से मुक्त होते हैं। और रात्रि को तन मन वचन से जो पाप करते हैं, प्रातः-काल में महाभारतका नाम गान कर उससे छूटते हैं। वेदविद् ब्राह्मण को सुवर्णशृङ्ग-युक्त सौ गौ दान करनेवाले बहुश्रुतजन और सदा सुपवित्र भारतीय कथा सुननेवाला इन दोनों को तुल्य फल लाभ होता है। जैसे मनुष्यगण अर्णवश्यान पर परम सुखसे विस्तीर्ण समुद्र को पार कर सकते हैं, तैसेही पहिले इस पर्व्वसंग्रह को सुनने से इसके द्वारा अति श्रेष्ठ महार्थयुक्त इस महत् आख्यान-रूपी सागर को सुखसे पार कर सकते हैं।

आदिपर्व्व में दूसरा अध्याय और पर्व्व संग्रहपर्व्व समाप्त।

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, श्रुतसेन, उग्रसेन, और भीमसेन, इन तीन भाइयों के साथ परीक्षित-पुत्र महाराज जनमेजन ने कुरुक्षेत्र में दीर्घ यज्ञ का अनुष्ठान किया। उनके उस यज्ञानुष्ठान के काल में वहां एक कुत्ता आकर उपस्थित हुआ। जनमेजयके भाइयों के उसे मारनें पर वह रोता हुआ अपनी माता के पास जा पहुंचा। उसे रोते देखकर माता ने पूछा, "तुम क्यों रो रहे हो? किसने तुमको मारा है?" माता से पूछे जाकर कुत्ते ने उत्तर दिया, "जनमेजय के भाइयोंने मुझको मारा है।" उसकी माता बोली, "कदाचित तुमने वहां कोई दोष किया होगा, सो उन्होंने तुमको मारा है।" कुत्ते ने फिर कहा, "नहीं मैंने कोई दोष नहीं किया, यज्ञका घृत भी नहीं चाटा और न उस पर दृष्टि दी थी।" यह सुन कर उसकी माता को बड़ा दुःख हुआ और जहां महाराज जनमेजय भाइयोंके साथ दीर्घ यज्ञ अनुष्ठान कर रहे थे, उस यज्ञस्थल में उप-स्थित होकर क्रोध दिखाकर जनमेजय से कहा, "मेरे इस पुत्रने तुम्हारा कोई दोष नहीं किया, यज्ञ का घृत भी नहीं चाटा और न उस पर दृष्टि ही दी, फिर तुमलोगोंने क्यों उसको मारा है?" उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया, तिसपर सरमा नाम्नी देवकुत्तीने उनसे कहा, "जोकि तुमने मेरे निर्द्दोषी पुत्र को मारा है, सो तुमको अलक्षित भय आकर घेर लेगा।" देवकुत्ती सरमा के इस प्रकार से शाप देने पर, जनमे-जय को बड़ी घबराहट और उदासी आगई।

अनन्तर उस यज्ञ के समाप्त होने पर, महाराज जनमेजय हस्तिनापुर में आकर ऐसे योग्य पुरोहित के अन्वेषण के लिये बड़ा प्रयत्न करने लगे जो कुत्ती के शाप से मुक्त कर सकते हैं। एक दिन मृगया को निकल कर उन्होंने अपने राज्य ही के किसी एक प्रदेश में एक आश्रम देखा। उस आश्रममें श्रुतश्रवा नामक एक ऋषि वसते थे, उनके सोमश्रो नामक एक परम तेजस्वी पुत्र थे। परीक्षित-पुत्र जनमेजय ने उस ऋषिपुत्र के समीप जाकर पुरोहित बनाने की प्रार्थना की और उनके पिता को दण्डवत् कर बोले, "हे भगवन्! आपके यह पुत्र मेरे पुरोहित होवें।" जनमेजय

के ऐसी प्रार्थना करने पर ऋषिवर बोले, "हे जनमेजय! मेरा यह पुत्र महातपस्वी, सदा वेदपठन में नियुक्त और मेरे तपोवीर्य्य युक्त है। एक सर्पीने मेरा वीर्य्य पी लिया था, उसीसे उसके गर्भ में इसने जन्म लिया है, यह तुमको सब शापों से मुक्त कर सकेगा; केवल महादेवजी के दिये हुए शापको रोक नहीं सकेगा। इसका यह एक गूढ़ नियम है, कि कोई ब्राह्मण इस से जोकुछ प्रार्थना करेंगे, यह उनको वही दान कर देगा, यदि तुम इस बतका साहस कर सको, तो मेरे इस पुत्र को ले जाओ।" ऋषि के ऐसा कहने पर जनमेजय "बोले, भगवन्! आप जो कहते हैं, वही होगा।" आगे वह पुरोहित को सङ्ग लेकर राजधानी में आकर भाइयों से बोले, "इस ऋषिकुमार को मैंने पुरोहिती में वरण किया है। यह जब जो कुछ कहेंगे, तुम तभी बिना विचारे वह पूरा करना।" जनमेजय के भ्रातगण इसप्रकार आदिष्ट होकर ऋषिकुमार की आज्ञा पालने लगे। महाराज जनमेजय भाइयों को यह आज्ञा देकर तक्षशिला देशको जीतने गये और उस देश को अपने वशमें करलिया।

जब राजा जनमेजयने तक्षशिला देश को जीता था, उस समय आयोदधौम्य नामक जो एक ऋषि थे, उसके उपमन्यु, आरुणि और वेद, यह तीन शिष्य थे। ऋषिने एक समय पाञ्चाल देशीय शिष्य आरुणि को यह आज्ञा देकर, कि "बेटा आरुणे! तुम खेत में जाकर बांध बांधो," खेत में भेज दिया। आरुणि गुरु से आदिष्ट होकरके वहां जाकर बड़े बड़े कष्ट उठाने परभी जब बांध को बांध नहीं सका, तब अन्तमें एक उपाय यह ठहराया, कि खेत की मोरी में जाकर लेट रहा। उसके लेटने पर जल की गति भी रुक गई।

अनन्तर एकदिन आयोदधौम्य ने शिष्योंसे पूछा, "पाञ्चाल देशी आरुणि कहां गया है?" शिष्योंने उत्तर दिया, भगवन्! आपहीने उसको खेतका बांध बांधनेको भेजा है। शिष्योंसे यह सुनकर आयोद-धौम्यने कहा, "चलो, जहां आरुणि गया है, हम सब वहीं चलें।" आगे वह बांधके पास पहुंचकर चिल्लाकरके पुकारने लगे, "बेटा पाञ्चाल्य आरुणे! कहां हो? चले आओ।" आरुणि उपाध्याय की बात सुनकर उस बांधसे एकायक उठकर उनके निकट उपस्थित हुआ और कहा, "भगवन्! मैं आया हूं; आपके खेत का जल निकल रहा था, जब किसी प्रकार उसे रोक नहीं सका, तब अन्तमें वहां लेटा, इसी से जलका निकलना बन्द हुआ। इस समय आपके पुकारने पर एकायक खेत से निकल कर आपके पास आ पहुंचा हूं और प्रणाम करता हूं, आप आज्ञा कीजिये इस समय कौनसा कार्य्य करना होगा।" आरुणि की बात पूरी होनेपर उपाध्यायने कहा, "बेटा! खेत की मोरीसे निकल आये हो, सो तुम उद्दालक नाम से प्रसिद्ध होगे।" यह कह कर उपाध्याय उस पर कृपाकटाक्ष कर बोले, "जोंकि तुमने तन मन वचन से मेरी आज्ञा पालन की है, सो तुम्हारा मङ्गल होगा और सम्पूर्ण वेद और धर्म्मशास्त्र तुम्हारे मन में प्रकाशित रहेंगे।" आगे आरुणि उपाध्याय की आज्ञा से मनमाने देश को पधारा।

आयोदधौम्यके दूसरे शिष्य का नाम उपमन्यु था। उपाध्यायने उसको यह कहकर, कि "बेटा! तुम गोरक्षा करो," गोरक्षा के लिये भेज दिया। उपमन्यु उपाध्याय के वाक्यानुसार गोरक्षा करने लगा। दिन भर गोरक्षा कर सन्ध्या को गुरु के सामने आकर दण्डवत् किया करता था। एक दिन उपाध्यायजी उसको पुष्ट देखकर बोले, "बेटा उपमन्यो! तुमको बहुत पुष्ट देखता हूं, तुम क्योंकर भूख मिटाते हो?" उपमन्यु बोला, "मैं भिक्षासे अपनी जीविका निर्व्वाह कर लेता हूं।" उपाध्याय

बोले, कि, "मेरी आज्ञा बिना भिक्षा का अन्न भोजन न करना।" उपाध्याय के ऐसी आज्ञा करने पर वह भिक्षा से जो कुछ पाता था, सब गुरु को सङ्कल्प कर छोड़ता था। उपाध्यायके उसके सब भिक्षान्न ले लेने पर वह 'ऐसाही हो' कह कर गोरक्षा करनेको जाता था। इस प्रकार से नित्य दिनभर गो-रक्षा कर रात्रि को गुरु के घर में आकर उनको नमस्कार किया करता था। तिस पर भी उसको पुष्ट देखकर उपाध्यायजी बोले, "बेटा उपमन्यो! तुम्हारा सब भिक्षान्न तो मैं ले लेता हूं; अब तुम किस प्रकार से भोजनकार्य्य निर्व्वाह करते हो?" उपमन्यु बोला, "पहिली वारकी भिक्षा से जो कुछ मिलता है, वह आप को देकर मैं फिर दूसरी वार भिक्षा करता हूं, उसी से मेरी जीविका निर्व्वाह होती है।" उपाध्याय बोले, "ऐसा करना गुरुकुल में रहनेवाले को उचित नहीं है, इससे दूसरे भिक्षार्थियों की वृत्ति मारी जाती है, ऐसा करने के हेतु तुम्हारा बड़ा लोभ प्रकाश होता है।" उपमन्यु यह कह कर कि "फिर ऐसा न करूंगा" पूर्व्ववत् गो-रक्षा करने लगा और दिन भर गो-रक्षा करके सन्ध्या को गुरु के घर में आकर पूर्व्ववत् गुरु के सामने खड़े हो कर नमस्कार किया करता था। उपाध्याय ने तिस पर भी उस को पूर्व्ववत् पुष्ट देखकर फिर पूछा, "बेटा उपमन्यो! तुम भिक्षा कर जो कुछ पाते हो, वह सबतो मैं ले लेता हूं, फिर दूसरी वार तुम भिक्षा भी नहीं करते हो, तिसपर भी तुमको बहुत पुष्ट देखता हूं, सो इन दिनों तुम क्या खाते हो?" उपमन्यु बोला, "इन गौओं का दूध पीकर जीता हूं।" उपाध्याय बोले, मैंने तुमको गौओंका दूध पीने नहीं कहा; सो मेरी आज्ञा विना दूध पीना उचित नहीं है। उपमन्यु तथास्तु कहकर प्रतिज्ञा-पूर्व्वक गोरक्षा करके फिर गुरुके घरमें आनकार पूर्व्ववत् नमस्कार कर खड़ा हुआ। उपाध्याय ने उसको पूर्व्ववत् पुष्ट देखकर कहा, "बेटा उपमन्यो! भिक्षान्न भोजन नहीं करते, दूसरी वार भिक्षा भी नहीं करते, दूध भी नहीं पीते, तौभी पुष्ट बने हो, अब किस प्रकारसे भूख मिटाते हो?" उपाध्याय के ऐसा कहने पर उपमन्यु बोला, "जब बछड़े अपनी अपनी माताओं के स्तन पीते हैं, तब उनके मुंह से जो फेन निकल कर गिरता है, मैं उसी को पीकर प्राण बचाता हूं। उपाध्याय बोले, "यह सब गुणवान् बछड़े तुम पर दया करके बहुत अधिक फेन उगिल डालते हैं; तुम उसी फेनको पीकर बछड़ों की वृत्ति लोप करते हो; सो फेन पीना भी तुमको अनुचित है। उपमन्यु तथास्तु कहकर अङ्गीकार करके फिर गोरक्षा करने लगा। पर गुरुके मना करनेके कारण नतो भिक्षान्न भोजन किया, न दूसरी वार भिक्षा की, न दूध पीया और न उगिला हुआ फेन ही पीया, सो एक दिन वन में भूख से अति कातर होकर उसने मदारका पत्ता खालिया; वह खारा, तीता, कड़ुआ, रूखा, पचने में तीखा पत्र खाकर उसने अपनी आंखें बिगाड़ी। वह उसीसे अन्धा हुआ; आगे वन में घूमता हुआ एक कूयेंमें गिर पड़ा; सूर्य्यदेव अस्ताचल-चोटी पर चढ़ गये; तौभी जब उपमन्यु गृहमें न लौटा, तब उपाध्याय ने शिष्यों से पूछा, "उपमन्यु क्यों नहीं आता है?" शिष्यों ने कहा, "कदाचित गोरक्षा के लिये उपमन्यु वन में गया है।" उपाध्याय बोले, "मैंने उसको सब प्रकार के भोजन करने को मना कर दिया है, इससे वह निःसन्देह क्रोधित हुआ है, सो अबतक न आता होगा; अब उसको खोज करनी उचित है।" यह कहकर शिष्यों के सङ्ग वन में जाकर उनको पुकारने लगे, "बेटा उपमन्यो! कहां हो? आओ। उपमन्यु गुरु की बात सुनके चिल्लाकर बोला, "मैं इस कूप में पड़ा हूं।" उपाध्यायने पूछा, "तुम कैसे कूपमें जा

गिरे?" उपमन्यु बोला, मदारका पत्ता खाकर मैं अन्धा होगया हूं, सो कूप में गिर गया हूं।" उपाध्याय बोले, "दोनों अश्विनीकुमारों का स्तव करो, वे देवताओंके चिकित्सक हैं, तुम्हारी आंखे बना देंगे।" उपाध्याय की ऐसी आज्ञा पाकर उपमन्यु ऋग्वेद-विहित वाक्योंसे दोनों अश्विनीकुमारो का स्तव करने लगा।

हे दोनों अश्विनीकुमार! तुम सृष्टि के पहिले विद्यमान थे और हिरण्यगर्भरूप में पहिले उत्पन्न हुए थे; तुमही विचित्र प्रपञ्च का स्वरूप धारण कर प्रकाशमान होते हो; देश, काल और अवस्था द्वारा तुम्हारा निर्णय नहीं हो सकता, सो मैं वाक्य और तपस्या द्वारा तुमको आत्मस्वरूपमें प्राप्त करना चाहता हूं। तुम वृत्ति और चैतन्यका रूप धारण कर द्योतमान होते हो; शरीररूपी वृक्ष पर पक्षी के स्वरूप में चढ़े हो और प्रकृतिगत विक्षेपनीशक्ति से सम्पूर्ण जगत् को रच रहे हो; तुम सत्त्व, रज, तम, इन तीन गुणों से अतीत और मनके अगोचर हुए हो। तुम ज्योतिर्म्मय सङ्गरहित परब्रह्मस्वरूप, लयपाये जगत् के अधिष्ठान और भ्रम औ क्षय-वर्ज्जित हुए हो। तुम सुन्दर नाकयुक्त अर्थात् शरीर धर्म्मयुक्त हो; तिस परभी काल को जीत चुके हो। तुम दिवाकरको रचकर दिन और रात्रिरूपी शुक्ल और कृष्ण तांतों से वर्ष रूपी वस्त्र बना रहे हो; इसी से कर्म्म-फल भोगने को लोकों का पथ बना देते हो। जीवरूपी पक्षी के परमात्मा की कालशक्ति से ग्रसित होने के कारण उसको मोक्षरूपी महत् सौभाग्य देने को अश्विनीकुमारों के स्वरूप में प्रकटित हुए हो। रागादि विषयों से जकड़े हुए बड़े मूर्ख जन जब तक इन्द्रियों के अधीन फंसे रहते हैं, तबतक तुम लोगों को शरीरधारी समझते हैं! अहोरात्ररूपी तीन सौ साठ गाय सबको उपजाने और सबको नष्ट करनेवाला वर्षरूपी जो बछड़ा उत्पन्न करती हैं और तत्व जानने की अभिलाषा राखनेवाले जिस बछड़े की सहायता से नानाक्रियाओं में तत्वज्ञानरूपी दूध दूह लेते हैं, तुम उस वर्षके उपजानेवाले हुए हो। वर्षरूपी जिस एकही धूरे में अहं रात्ररूपी सातसौ बीस आरे बारह मासरूपी नाहे के अवलम्बन से हैं, तुमने उस अनियत मायामय अक्षय कालचक्र को नियुक्त किया है, वह कालचक्र इस लोक और परलोक की सम्पूर्ण प्रजा को स्पर्श कर रहा है। मेषादि राशि-रूपी बारह आरे, ऋतुरूपी छः धूरे और वर्ष-रूपी एक अक्षवाला तथा कर्म्मफलरूपी आधार युक्त जो एक चक्र है, कालकेअधिष्ठाता देवगण भी जिसमें स्थित हैं, तुम मुझे उस कालचक्र से मुक्त करो, मैं जन्मादि दुःख से बड़ा उदास हो रहा हूं। तुम विषय आदि सम्पूर्ण प्रपञ्चों से भरे हो, तुम ही कर्म्मफलरूपी हो, तुमही आकाशादि के लय के कारण हो, तुमही अनादि अविद्यादोष से भोग्य पदार्थों में इन्द्रिय संयोग करके परम सुख से विचर रहे हो और इधर तुमही परब्रह्म-रूपी हो; हे दोनों अश्विनीकुमार! तुमने पहिले दशदिशा, सूर्य्य और आकाशको रचा; उस सूर्य्यकृत दिशा और काल के अनुसार ऋषिलोग वेदविहित सम्पूर्ण कर्म्मों का अनुष्ठान करते हैं और देवता तथा मनुष्य अपने अपने अधिकार के अनुसार ऐश्वर्य्य भोगते हैं। तुमने पञ्चतन्मात्रको रचकर उनको परस्पर मिलावट से नाना प्रकारके पदार्थ उप-जाये हैं और उसीसे इन चौदह भुवनों की सृष्टि हुई है। प्राणगण देह, इन्द्रिय और बुद्धिरूपी विकारके वश में होकर विषयको भोग रहे हैं और देवता, मनुष्य और पशुआदि सब इस पृथ्वी को आश्रय किये हुए हैं; हे प्रसिद्ध दोनों अश्विनीकुमार! मैं तुम्हारा पूजा करता हूं। और तुम्हारे उत्पन्न किये हुए अनन्त आकाशके कार्य्योंकी भी पूजा करता हूं

कर्म्मफलके बिना देवगण भी किसी कार्य्य में सफलमनोरथ नहीं होसकते; तुम उस कर्म्मफल के उपजानेवाले और नित्यमुक्त हो। तुम सूर्य्यके स्वरूप में किरणद्वारा जलरूपी गर्भ धारण करती हो, वह किरण जीवनहीन होने परभी गर्भ धारणाकरके प्रसव करती है, वह जलरूपी गर्भ मेघ से जन्म लेते ही भूलोक में फैल जाता है। लोकों के जीवन के लिये तुमही उस जीवनरूपी गर्भ को त्याग करते हो।

उपमन्यु के इस प्रकार स्तव करने पर दोनों अश्विनीकुमार उस स्थान में आनकर बोले, कि हम तुम्हारे स्तव से प्रसन्न हुए हैं, तुमको पिष्टक देते हैं भोजन करो। अश्विनी कुमारों से ऐसी आज्ञा पाकर उपमन्यु बोला, "तुम कभी मिथ्या नहीं बोलते, पर मैं गुरुको बिना निवेदन किये यह पिष्टक नहीं खा सकता।" अश्विनीकुमारों ने कहा, "पहिले तुम्हारे उपाध्याय ने हमारा स्तव कियाथा, हमारे प्रसन्न होकर ऐसा पिष्टक देने पर उन्होंने गुरुको बिना निवेदन किये भोजन कर लिया था; तुम्हारे उपाध्याय ने जैसा किया था, तुम भी तैसाही करो।" उपमन्यु ने उत्तर दिया, "हे दोनों अश्विनीकुमार! आप कभी मिथ्या वचन नहीं बोलते, तौभी मैं तुम से विनय कर कहता हूं, "गुरु को बिना निवेदन किये यह पिष्टक खा नहीं सकूंगा।" दोनों कुमार बोले, "तुम्हारी ऐसी अटल गुरुभक्ति देखकर हम बड़े प्रसन्न हुए। तुम्हारे गुरुके काले लोहेके दांत हुए; पर तुम्हारे दांत सोने के होंगे, अर्थात् तुम्हारे गुरु, शिष्यों से जिस निर्दयता से व्यवहार करते हैं, तुम तैसा न करके उन पर दयाशील होगे। बेटा! तुम्हारी सुन्दर आंखें होंगी और तुम्हें मङ्गल प्राप्त होगा।"

अश्विनीकुमारों के इस प्रकार वर देने पर उपमन्यु के सुन्दर नेत्र हुए। आगे उसने उपाध्याय के सम्मुख आकर नमस्कार किया और प्रारम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उपाध्याय वह सुन कर प्रसन्न होकर बोले, अश्विनीकुमारों ने जो कुछ कहा है, वही होगा, तुमको मङ्गल प्राप्त होगा, और सम्पूर्ण वेद और धर्म्मशास्त्र तुम्हारे स्मरण-मार्ग में प्रकटित रहेंगे। गुरुभक्त उपमन्यु को यह परीक्षा हुई।

उक्त आयोदधौम्य के तीसरे शिष्यका नाम वेद था। उपाध्याय ने उस को आज्ञा करी, "बेटा वेद! तुम कुछ दिन मेरे घरमें रहकर गुरु-सेवा करो, तुम्हारा मङ्गल होगा।" वेद तथास्तु कहकर बहुकाल गुरुकुल में रहकर गुरु-सेवा करने लगा। उपाध्याय उस पर बैल के समान नित्य नाना भार डाल देते थे। उसने भी शीत, ग्रीष्म, क्षुधा, प्यास आदि सब दुःख सह लेकर और किसी बात में विरोधी न होकर बहुत काल तक गुरुसेवा की। बहु काल के पश्चात् उपाध्याय प्रसन्न हुए, इसी से वेद ने कल्याण और सर्व्वज्ञता लाभ की। उसने उपाध्याय की आज्ञा से गुरुकुल से लौट कर गृहस्थाश्रम अवलम्बन किया।

निज गृह में बसने के काल में उनके तीन शिष्य हुए। वह शिष्यों को "कर्म्म करो वा गुरुसेवा करो" कुछ बोलता नहीं था, क्योंकि वह गुरुकुल में बसने का दुःख विलक्षण ही जानता था, सो शिष्यों को कष्ट देना नहीं चाहता था। एक समय जनमेजय और पौष्य इन दो क्षत्रियों ने आकर वेद को उपाध्याय के पद में वरण किया। एक दिन वेद ने याजन-कार्य्य में जानेके कालमें उतङ्क नामक शिष्य को आज्ञा दी, "हे उतङ्क! मैं चाहता हूं, कि मेरी अनुपस्थिति में गृहमें जो कुछ अभाव हो, तुम उन को पूरा किया करो।" वेद उतङ्क को यह आज्ञा देकर बाहर चले गये। गुरुसेवा-शील उतङ्क गुरुनियोग का अनुष्ठान कर के

गुरुकुल में बसने लगा। उस काल में एकदिन उपाध्याय के घर की स्त्रियां एकत्र होकर उतङ्क को बुलाकर बोलीं, "उतङ्क! तुम्हारी उपाध्यायनी ऋतुमती हुई हैं, तुम्हारे उपाध्याय भी घर में नहीं हैं, परदेश को चले गये हैं, सो जिस से उनकी ऋतु खाली न जाय, तुम तिसका विधान करो, क्योंकि वह बड़ी उदास हुई हैं।" उतङ्क ऐसी आज्ञा सुनकर बोला, मैं स्त्रियों की बात सुनकर ऐसा कुकर्म्म नहीं कर सकूंगा, उपाध्याय ने मुझे ऐसी आज्ञा नहीं दी, कि "तुम कुकर्म्म भी करना।"

कुछ कालान्तर उपाध्याय परदेश से घरमें लौट आये और यह सब वृत्तान्त जान कर उतङ्क पर प्रसन्न होकर बोले, "बेटा उतङ्क! तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य्य करूं? तुमने धर्म्मानुसार मेरी सेवा की है, सो परस्पर हम में प्रीति बढ़ी है, अब आज्ञा देता हूं, कि तुम घर लौट जाओ तुम्हारी सम्पूर्ण अभिलाषा पूर्ण होगी।" उपाध्याय के ऐसा कहने पर उतङ्क बोला, "मैं आपका कौनसा पलटेमें उपकार करूं? कहा है, जो विद्या पढ़ाकर दक्षिणा नहीं लेता और जो धर्म्मपूर्व्वक विद्या पढ़ कर दक्षिणा नहीं देता, उन दोनों में एक मर जाता है और उनमें आपसका द्वेषभाव खड़ा होता है, सो आप की आज्ञा पाने से मैं गुरुदक्षिणा बटोरने का प्रयत्न करूं।" उपाध्याय बोले, बेटा उतङ्क! तब तुम और कुछ दिन मेरे घर रहो, आगे कहूंगा।"

कुछ दिनों के पश्चात् उतङ्क उपाध्यायजी से बोला, "आज्ञा कीजिये, कैसी गुरुदक्षिणा देने से आप प्रसन्न होंगे, मैं उसे लाने की चेष्टा करूं।" उतङ्क के ऐसी प्रार्थना करने पर उपाध्याय बोले, "बेटा उतङ्क! तुम बार बार मुझे कह रहे हो, गुरुदक्षिणा दूंगा, सो तुम गृह के भीतर जाकर उपाध्यायनी से पूछो, कि गुरुदक्षिणा के निमित्त क्या लाना होगा? वह जो कहेंगी, वही लाना। उपाध्याय के ऐसी आज्ञा करने पर उतङ्क ने उपाध्यायनी से पूछा, "भगवति उपाध्यायने मुझे घर जाने की आज्ञा दी है, पर मैं आपकी मनमानी गुरुदक्षिणा लाकर ऋणमुक्त होकर घर जाना चाहता हूं; सो आप आज्ञा कीजिये, कि गुरुदक्षिणाके निमित्त क्या लाना होगा?" उतङ्कके ऐसी प्रार्थना करने पर, उपाध्यायनी बोली, "बेटा उतङ्क! राजा पौष्य के निकट जाकर, उनकी स्त्री के धारण किये हुए दोनों कुण्डल मांग लाओ। आगामी चौथे दिनको पुण्यक नामक व्रत का उत्सव होगा, मैं उस दिन उन दोनों कुण्डलों से सजधज कर ब्राह्मणों को अन्न बांटना चाहती हूं। सो तुम यही कार्य्य करो, ऐसा करनेसे तुम्हारा मङ्गल होगा, और इसके न करने से किसी प्रकार से तुम्हारी भलाई नहीं है।" उपाध्यायनी के ऐसी आज्ञा करने पर उतङ्क उन कुण्डलों को लाने गया। जाने के कालमें पथ में देखा, कि एक वृहदाकार पुरुष एक बड़े भारी बैल पर चढ़ कर चले जा रहे हैं। उन्होंने उतङ्क को देखकर कहा, "ऐ उतङ्क! इस बैल का यह गोबर खाओ।" उतङ्कको गोबर न खाने की इच्छा दिखाने पर उस पुरुषने फिर कहा, "उतङ्क! खाजाओ, मत विचारो। पहिले तुम्हारे उपाध्यायने भी यह किया था।" यह सुनकर उतङ्क बैल का गोबर और मूत्र खा पीकरके उठकर भ्रमवश पथमें चलते ही चलते आचमन कर चला गया।

अनन्तर पौष्य नाम क्षत्रियवर के निकट उपस्थित होकर देखा, कि वह आसन पर विराज रहे हैं। उतङ्क उनको आशीस देकर बोला, "मैं कुछ भिक्षा के निमित्त आप के पास आया हूं।" पौष्य ने पांव छूकर कहा, "मैं आपका नौकर पौष्य हूं, कहिये क्या करना है।" उतङ्क बोला, "मैं गुरु-दक्षिणा देनेके लिये दो कुण्डल मांगने आया हूं, आपको धर्म्म-

पत्नी जो दो कुण्डल पहिनती हैं, आप उन्हींको दान दीजिये।" पौष्य बोले, "भीतर जाकर मेरी स्त्रीसे मांगिये।" यह सुनकर वह भीतर जाकर और पौष्य की स्त्री को न देख कर पौष्यके निकट लौट आकर बोला, "मुझे इस प्रकार झूठ मूठ ठगना नहीं चाहिये, भीतर आपकी धर्म्मपत्नी नहीं हैं, रहतीं तो दीखतीं।" पौष्य चणकाल शोच कर बोले, "भगवन्! स्मरण कर देखिये, कि अवश्यही उच्छिष्ट आपके मुहमें है। उच्छिष्टसे अपवित्र जन उसकी भेंट नहीं कर सकता, वह पतिव्रता हैं, सो वह अशुचि-जन को दिखाई नहीं देतीं। पौष्य के ऐसा कहने पर उतङ्कने स्मरण कर कहा, "हां मैंने आते समय एकायक उठकर चलतेही चलते आचमन किया था।" पौष्य बोले, "आपही की भूल हुई। जाते हुए वा खड़े खड़े आचमन करना ठीक नहीं है।" उतङ्क ने "ठीक कहा" यह कह कर पूर्व्व और मुह फेरके बैठ कर हाथ, पांव, मुह धोकर बिना शब्द तीन बार फेनरहित, शीतल, हृदय-तक पहुंचने-योग्य जल पीकर दोबार दोनों होठों को मलकर और विहित इन्द्रियों को छूकरके आचमन कर अन्तःपुरमें प्रवेश किया और वहां चत्राणी को देखा। पौष्य की स्त्री उतङ्कको देखकरके उठकर नमस्कार पूर्व्वक स्वागत पूछकर बोली, "भगवन्! आज्ञा कीजिये, क्या करूं?" उतङ्क बोला, "गुरुदक्षिणा देने को मैं आपके दोनों कुण्डल मांगता हूं, मुझे दान कर दें।" उसकी यह गुरुभक्ति देखकर पौष्य-पत्नी अति प्रसन्न हुईं और यह सोचकर, कि "यह सुपात्र हैं, इनकी प्रार्थना अस्वीकार न करनी चाहिये" ऐसा विचार कर कानों से कुण्डल खोलकर उनको दे दिये और कहा, "नागराज तक्षक इन कुण्डलों को बहुत चाहते हैं, सो बड़ी सावधानता से ले जाइये।" यह सुनकर उतङ्क बोला, "भगवति! मत सोचिये, तक्षक मुझसे कुण्डल नहीं ले सकेगा।" यह कह कर पौष्य की स्त्रीसे विदा होकर पौष्य के पास आपहुंचा और कहा, "हे पौष्य! मुझे परम सन्तोष लाभ हुआ। पौष्यने उससे कहा, "भगवन्! सदा सत्पात्र नहीं मिलते, आपभी सर्व्वगुणशील अतिथि उपस्थित हैं, सो श्राद्ध करना चाहता हूं; आप क्षण भर ठहरिये।" उतङ्क बोला, "ठहरा हूं, जो अन्न उपस्थित हो, आप वही शीघ्र लाइये। पौष्यने वही स्वीकार कर जो अन्न उपस्थित था, वही लाकर उन्हें भोजन करने को दिया। उतङ्क ने केशयुक्त औ शीतल अन्न देखकर अशुचि समझकरके पौष्य से कहा, "जोंकि तुमने मुझको अशुचि अन्न दिया है, सो तुम अन्धे होगे।" पौष्य बोले, "तुम दोष देने के अयोग्य अन्नपर दोष डालते हो, सो तुम्हें सन्तान न होगी।" उतङ्क बोला, "अशुचि अन्न भोजन करने देकर पलटे में शाप देना उचित नहीं है। आप भली भांति देख लीजिये, यह अन्न अशुचि है वा नहीं।" यह सुन कर पौष्यने उस अन्नकी परीक्षा कर उसकी अपवित्रता प्रत्यक्ष की।

अनन्तर अन्नको मुक्तकेशी स्त्री का लाया हुआ, शीतल और केशयुक्त जानकर राजा पौष्य उतङ्क ऋषिको प्रसन्न करने लगे और विनयसे कहा, "भगवन्! न जानकरके ही शीतल और केशयुक्त अन्न लाया हूं, अब आप से क्षमा मांगता हूं, मुझे अन्धा होना न पड़े।" उतङ्क बोला, "मेरी बात मिथ्या नहीं होती, आप अन्धे होकर अति शीघ्र नेत्रशील होंगे। आपने मुझको जो शाप दिया है, वह न फलने पावे।" पौष्य बोले "शाप लौटाने की सामर्थ मुझमें नहीं है, अभीतक मेरा क्रोध शान्त नहीं हुआ, क्या आप नहीं जानते, कि ब्राह्मण का हृदय मक्खनके समान है, थोड़े ही में गल जाता है और बात उनकी तेज अस्तुरेके समान

है; पर क्षत्रियों में यह दोनों ही विपरीत हैं अर्थात् बात उनकी मक्खन-तुल्य और हृदय तेज अस्तुरे के सदृश हैं। सो जाति-सिद्ध तेज-हृदय के हेतु उस शाप को लौटा नहीं सकूंगा, आप जाइये।" उतङ्क बोला, "आपने अन्न की अपवित्रता प्रत्यक्षकर मुझसे विनय किया, पहिले कहाथा, 'दोषस्पर्शरहित अन्न के अशुचि होने का दोष लगातेहो, सो तुम्हारे सन्तान नहीं होगी।' अब जब अन्न में दोष प्रत्यक्ष हो गया है, तब फिर वह शाप मुझ पर कार्य्य नहीं करेगा। अब मैं जाता हूं, यह कहकर उतङ्क दोनो कुण्डल लेकर पधारा।

पथ में देखा, कि एक नङ्गा सन्यासी कभी दीखता और कभी न दीखता हुआ आरहा है। अनन्तर उतङ्क धरती पर दोनों कुण्डल रखकर पिशाब करने लगा। इसी बीच में वह सन्यासी शीघ्रतासे आकर दोनों कुण्डल लेकर दौड़ा। पिशाब होजाने पर उतङ्क शुचि और संयत हो देवता और गुरु को नमस्कार कर बड़े वेगसे सन्यासीके पीछे दौड़ा। जब बहुत निकट पहुंचा, तब उसको पकड़ लिया। तक्षक पकड़े जाकर सन्यासी का रूप छोड़ कर अपना रूप धरके उसी स्थान में एक चौड़े बिल के भीतर जा घुसा, अनन्तर उस भारी बिल से नाग-लोक में जाकर अपने घर में पहुंचा। पौष्यपत्नी की बात स्मरण कर उतङ्क तक्षक के पीछे चलने के लिये उस बिल को लकड़ी से खोदने लगा; पर किसी प्रकार से सफल-मनोरथ नहीं हो सका। तब इन्द्रने यह देखकर, कि ब्राह्मण बड़ा कष्ट पारहा है, वज्र को आज्ञा करके भेजा, "वज्र जाओ, उस ब्राह्मण की सहायता करो।" आगे वज्रने उस लकड़ी के अगले अंश में घुसकर बिल को फाड़ दिया। तब उस बिल के भीतर घुस करके नागलोक में जाकर उतङ्क ने भांति भांतिके मन्दिर, राज-महल, गुम्बचोटी, द्वार और नाना प्रकार के आश्चर्य क्रीड़ास्थान देखे। अनन्तर वह नागों की स्तुति करने लगे।

ऐरावत जिन सर्पों के राजा हैं, जोलोग रणभूमि में सुशोभित और बिजली तथा पवन के समान वेगवान् होकर मानों अस्त्र बर्षाने लगते हैं, ऐसे सुन्दर रूपधारी और विचित्र कुण्डलधारी ऐरावतवंशी नागगण देवलोक में सूर्य्य की भांति प्रकटित हैं। गङ्गाजी के उत्तर कुल में अनेक सर्पों के वासस्थान हैं, मैं वहां के उन नागों का भी स्तव करता हूं। ऐरावत के बिना कौन जन सूर्य्य-किरणरूपी सेना में घूम घाम सकता है? जब धृतराष्ट्र चलते हैं, तब उनके पीछे अठाइस सहस्र आठ नाग दल बांधकर गमन करते हैं। ऐरावतके उन सब कनिष्ठ भाइयों को भी, धृतराष्ट्र के निकट के या दूरके हैं नमस्कार करता हूं। जो पहिले कुरुक्षेत्र और खाण्डवप्रस्थ में वसते थे, कुण्डलके निमित्त उन नागराज तक्षक का स्तव करता हूं। तक्षक और अश्वसेन यह दोनों नित्य के साथी होकर कुरुक्षेत्र में इक्षुमती-नदी के तट पर वसते थे। श्रुतसेन नामक तक्षक के जो कनिष्ठ भ्राता नामोंमें श्रेष्ठता पाने की प्रार्थना कर सूर्य्य की उपासनापूर्व्वक कुरुक्षेत्र में स्थित थे, मैं उन महात्मा को भी नमस्कार करता हूं। इस प्रकारसे श्रेष्ठ नागों के स्तव करने पर भी कुण्डल न पाकर विप्रऋषि उतङ्क चिन्तायुक्त हुए। जब नागों की स्तुति करने परभी कुण्डल न मिले, तब उन्होंने देखा, कि दो स्त्रियां सुन्दर विभायुक्त तांत में वस्त्र बना रही हैं, उसके ताने सादे और काले रङ्ग के हैं और छः बालकोंसे घुमाये जाते हुए बारह आरों का एक चक्र देखा; एक पुरुष और एक सुन्दर घोड़ेकोभी देखा। उतङ्क निम्नलिखित मन्त्र-वाक्य से उनके स्तव करने लगा।

इस चौबीस पर्व्वयुक्त सनातन चक्र में तीन सौ साठ ताने लगाये गये हैं, छः कुमार इसको

घुमा रहे हैं। विश्वरूपिणी दोनों युवती इस ताने में सादे और काले सूत देकर सदा वस्त्र बनाती हुई सम्पूर्ण भूत और चौदहों भुवनों को घुमा रही हैं। जो महात्मा दो कालेवस्त्र पहिनते हैं, जिन्होंने वज्रधारी होकर नमुचि और वृत्रासुर को वध किया था; जो तीनों भुवनों को रक्षा करते हैं; जो लोकों में सत्य और असत्य बांट देते हैं; जिन्होंने वैश्वानर के समान तेजोवान् सामुद्रिक घोड़े को प्राप्त किया है, उन त्रिलोकनाथ विश्वेश्वर पुरन्दर को नमस्कार करता हूं।

उतङ्क के ऐसे स्तव करने पर वह पुरुष उनसे बोले, तुम्हारे इस स्तव से मैं प्रसन्न हुआ हूं, तुम्हारा कौनसा प्रिय कार्य्य करूं! उतङ्क उनसे बोला, "सम्पूर्ण सर्प मेरे वश में आवें"। उस पुरुषने फिर उतङ्क से कहा, "इस घोड़े के मलद्वार में फूंको।"

उतङ्कने उस पुरुष की आज्ञा से घोड़े के मलद्वारमें फूंक दिया; इससे घोड़े के सर्व्वशरीर के छिद्रों से धूंआसहित अग्निशिखा निकलने लगीं। अनन्तर उन अग्नि-शिखाओं से नागलोक गर्म्म होने पर तक्षकने अग्निके भयसे डरकर और चिन्तित होकर उन दोनों कुण्डलों के साथ गृह से एकायक निकल कर उतङ्क से कहा, "आप इन दोनों कुण्डलों को लें।" उतङ्क ने कुण्डलों को लिया और उन्हें लेकर सोचने लगा, "आजही तो उपाध्यायनी का पुण्यक-व्रत होनेवाला हैं, मैं भी बड़ी दूर आ पड़ा हूं क्योंकर उचित समय पर वहां पहुंच करके कार्य्य पूरा कर सकूंगा।" उतङ्क ऐसा सोच रहा था, कि ऐसे समय में वह पुरुषवर उनसे बोले, "उतङ्क इस घोड़े पर चढ़लो; ऐसा करने से थोड़े काल में तुम गुरु के घर में पहुंच सकोगे।" उतङ्क "तथास्तु" कहके उस घोड़े पर चढ़कर उपाध्यायकुल में लौट आया।

इधर उपाध्यायनी स्नान करके बैठ कर केश साफ करती और ऐसा सोचती हुई, कि "उतङ्क अभीतक नहीं आया" शाप देने का विचार कर रही थी, कि इतने में उतङ्क ने उपाध्याय के घर में प्रवेश करके उपाध्यायनी को प्रणामकर दोनों कुण्डल दे दिये। उपाध्यायनी उतङ्क से बोली, "बेटा उतङ्क? तुम्हारा मङ्गल होवे, तुम अच्छे अवसर में आ पहुंचे; अच्छा हुआ, कि मैंने तुमको विना दोष शाप नहीं दिया; अब तुम्हारे मङ्गल का अवसर आ पहुंचा है, तुम मनमाने विषयमें सिद्धिलाभ करो।" अनन्तर उतङ्क ने उपाध्याय को प्रणाम किया। उपाध्याय स्वागत पूछ कर बोले, "बेटा उतङ्क! तुमको आनेमें इतनी देर क्यों हुई?" उतङ्कने उत्तर दिया दिया, "नागराज तक्षक ने कुण्डल लाने में मुझे विघ्न किया था, सो मैं नागलोक में गया था। वहां देखा, कि दो स्त्रियां तांतमें वस्त्र बीन रही हैं, उस में जो सादे और काले रङ्गके सूत हैं वह क्या हैं? और भी देखा, कि छः कुमारों से बारह आरेवाला एक पहिया घुमाया जाता है। वह क्या है? एक पुरुष को देखा, वह कौन हैं? और बड़े भारी एक घोड़े को देखा, वह कौन है? पथ में एक बैल को देखा था, उस पर एक पुरुष चढ़े थे। उन्होंने विनयपूर्व्वक मुझ से कहा था, 'बेटा उतङ्क! तुम इस बैल का गोबर खा लो, पहिले तुम्हारे उपाध्याय ने भी ऐसाही किया था'; मैंने उनका वचन सुन कर उस बैल का गोबर खा लिया। जिन्होंने मुझे गोबर खाने कहा था, वह कौन हैं? मैं इन सब विषयों का पूरा वृत्तान्त आप से सुना चाहता हूं। उतङ्क के यह सब पूछने पर उपाध्याय बोले, "बेटा उतङ्क! तुमने जिन दो स्त्रियों को देखा, वे धाता और विधाता हैं; जिन सादी और काली तांतों को देखा, वे सब दिन और रात हैं; जिस चक्र को देखा, वह वर्ष है; जिन छः कुमारों को उस बारह

आरेवाले चक्रको घुमाते देखा, वे छः ऋतु हैं; और जिस पुरुष को देखा, वह इन्द्रजी हैं; जिस अश्व को देखा, वह अग्नि हैं; पथमें जानेके काल में जिस बैल को देखा, वह नागराज ऐरावत हैं; उनपर जो चढ़े थे वह इन्द्र हैं। और तुमने जो गोवर भोजन किया वह अमृत है। जिस अमृत को खाने के कारण तुम नागलोक में जाने पर भी नष्ट नहो हुए। वही भगवान् इन्द्र मेरे मित्र हैं, उन्होंने तुम्हारा कष्ट देख कर दयायुक्त होकर ऐसी कृपा दिखाई है, इसीसे कुण्डल लेकर तुम लौट आ सके हो। अतएव हे सुशील! मैं तुमको आज्ञा देता हूं, तुम घर जाओ, मङ्गल प्राप्त होगें।

भगवान् उतङ्क उपाध्यायसे विदा लेकर तक्षक पर क्रोधयुक्त रहने के कारण, बदला लेने की इच्छासे हस्तिनापुर को पधारे। विप्रवर उतङ्क बिना विलम्ब हस्तिनापुर में जा कर महाराज जनमेजय के निकट उपस्थित हुए। अजय जनमेजय इसके पहिले तक्षशिला-देश को जीतने गयेथे। वहां से जय लाभ करके लौट कर मन्त्रियों से वेष्टित हो सिंहासन पर आरूढ़ थे। ऐसे समय में उतङ्क उनको देखकर अवसर समझके, विधिपूर्व्वक अशीस देकर, साधुशब्दयुक्त सुशोभित बचनों से बोले, "हे श्रेष्ठ-नरनाथ! अपना कर्त्तव्य न पालन करके तुम बालकके समान दूसरे कार्य्यों में लगे हो।" श्रीउग्रश्रवाजी कहते हैं, कि उतङ्क से इस प्रकार कहे जाकर महाराज जनमेजय विधिपूर्व्वक उनकी पुजा करके बोले, "मैं इन प्रजाओंका पालन कर अपना क्षत्रियधर्म्म रक्षा कर रहा हूं, इस क्षण आप जो विचार कर यहां आये हैं, मेरा वह कर्त्तव्य ही क्या है, आज्ञा करें।

श्रीउग्रश्रवाजी कहते हैं, कि नरनाथ की यह बात सुनकर अति पुण्यशील द्विजोत्तम उतङ्कने उन अहीन-कान्ति महाराज जनमेजय को उत्तर दिया, कि हे नरनाथ! मैं तुमसे स्वकार्य्य-साधन ही का अनुरोध करता हूं। हे श्रेष्ठ महीपाल! जिस तक्षकने तुम्हारे पिताजी को नष्ट किया है, उस दुष्टात्मा सर्पको उचित फल दो। राजन्! इस विधिदर्शित कार्य्य का काल आ पहुंचा है, सो तुम्हारे उन महानुभाव जन्मदाता का जो अनिष्ट हुआ है, उसका बदला लो। दुष्ट स्वभावी दुरात्मा तक्षकसे तुम्हारे पिताजी बिना अपराध काटे जाकर वज्र-जले वृक्ष के समान मृत्यु को प्राप्त हुए हैं। जिस सर्पाधम तक्षकने बल और अहङ्कार से उछल कर तुम्हारे पिताको काटने का अनुचित कार्य्य किया है और राजर्षिवंश-वाले देव-सदृश महाराज परीक्षित को बचाने के लिये काश्यपवर धन्वन्तरिजीको आते देख-कर, उन को भी अर्थद्वारा जिस पापात्माने रोका था, हे महाराज! सर्पयज्ञका अनुष्ठान कर प्रज्वलित अग्नि में उस पापात्मा की आहुति चढ़ानी चाहिये, सो शीघ्र उसका अनुष्ठान करो। ऐसा करने से तुम्हारे पिताजी का बदला होजायगा और मेरा भी अति प्रिय कार्य्य होगा। हे निष्पाप पृथ्वीनाथ! मैं गुरु के लिये धन लाने गया था, इसमें उस दुरा-त्माने मुझे बड़ा विघ्न किया था।

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, कि महाराज जनमे-जय यह सुनकर जिस प्रकार घृतसे अग्नि जल उठता है, वैसेही उतङ्क के वाक्यरूपी घृतसे उनका क्रोधरूपी अग्नि जल उठा। आगे अति दुःखित होकर उतङ्कके सामने ही मन्त्रियों से पिता के परलोक सिधारने का वृत्तान्त पूछा। पर वह जब उतङ्क से पिता की मृत्यु का वृत्तान्त सुन चुके, तभी एकबारगी दुःख और शोक से विवश हो पड़े।

आदिपर्व्व में तीसरा अध्याय और पौष्यपर्व्व समाप्त।

लोमहर्षणपुत्र सौति पौराणिक श्री उग्रश्रवा जी, नैमिषारण्य में कुलपति शौनक जी के द्वादश-वार्षिकीयज्ञ में शुभागमन किये हुए ऋषियों के समीप उपस्थित होकर दोनों हाथ जोड़के बोले, "आपलोग इस समय क्या सुनना चाहते हैं? मैं क्या कहूं?" ऋषिलोग बोले, "हे लोमहर्षणपुत्र! हम लोग योग सम्बन्धी कथा सुनने के अभिलाषी होकर तुमसे जो जो पूछेंगे, तुम वह सब वर्णन करना। परन्तु भगवान् कुलपति शौनक जी इस समय अग्निगृह में विराजते हैं, जो देवासुर-सम्बन्धी सम्पूर्ण विषय जानते हैं और जो नर, उरग तथा गन्धर्व्वों के सम्पूर्ण वृत्तान्तों से ज्ञात हैं, विशेष करके जो इस यज्ञ के कुलपति और विद्वान्, कार्य्यकुशल, बुद्धिमान्, कर्म्मकाण्ड सम्बन्धी शास्त्र और उपनिषद सिखाने में अद्वितीय गुरु हैं, तथा सत्यवादी, शान्तिमें रत, तपस्वी और व्रतशील हैं; सो वह हम सबोंही के माननीय हैं, अतएव उनके लिये कुछ काल ठहरो, वह श्रेष्ठासन पर आरूढ़ होकर जो कुछ प्रश्न करेंगे, तुम वही वर्णन करना।" श्रीउग्रश्रवा जी बोले, "वही होवे; महात्मा गुरु शौनकजी के बैठकर प्रश्न करने ही पर मैं नाना विषय-सम्बन्धी कथा सुनाऊंगा।"

अनन्तर विप्रवर श्री शौनक जी वाक्यों से देवताओं को और जल से पितरों को तृप्त कर विधिपूर्व्वक सम्पूर्ण कार्य्यों को निर्व्वाह करके जिस स्थान पर उग्रश्रवा जी और सिद्धव्रतशील, ब्रह्मर्षिगण सुख से बैठे थे, उस यज्ञभूमि में उपस्थित हुए। आगे ऋत्विक और सभासदोंके बैठने पर कुलपति शौनक जी स्वयं बैठकर बोलने लगे।

आदिपर्व्व में चौथा अध्याय समाप्त।

श्रीशौनक जी बोले, "हे लोमहर्षणपुत्र! पहिले तुम्हारे पिताने सम्पूर्ण पुराण पाठ किये थे, क्या तुमने उन सबोंको पढ़लिया है? पुराणों में देवताओंके चरित्र और महानुभव पुरुषों के आदि-वंश-वृत्तान्त कथित हुए हैं; पहिले तुम्हारे पिताके निकट हमलोग वह सब सुन चुके हैं, इस समय उनमें सबसे प्रधान भृगुवंश का वृत्तान्त सुनना चाहते हैं, तुम वह कीर्त्तन करो, हमलोग एकचित्त होकर सुने जाते हैं।"

श्रीसूतपुत्रजी बोले, "हे द्विजश्रेष्ठ! आपने जिन विषयों को पुराणो में श्रवण किया है, और वैशम्पायन आदि द्विजवर और मेरे पिताने पाठ और कीर्त्तन किया है, मैंने उन सब विषयों को पिताजी से भलो भांति पढ़ लिया है; हे ब्रह्मन्! आप ध्यान देकर सुनिये। हे भृगुनन्दन! इन्द्र आदि देवगण,सप्तर्षिगण और मरुद्गण, जिस श्रेष्ठतर भृगुवंशका सम्मान किया करते हैं, मैं पहिले उस वंशही का वृत्तान्त यथावत् कीर्त्तन करता हूं, आप श्रवण कीजिये। सुन चुका हूं, कि महर्षि भृगु वरुणके यज्ञानुष्ठान के समय स्वयम्भू ब्रह्माजीके द्वारा अग्निसे उत्पन्न हुए थे। भृगुजीके बड़े स्नेहपात्र पुत्रका नाम च्यवन है; च्यवन के परम धार्म्मिक पुत्रका नाम प्रमति; प्रमतिके घृताची से जन्मे हुए औरस पुत्र का नाम रुरु है; रुरु से प्रमद्वरा के गर्भ से आपके पूर्व्व पितामह वेदज्ञ, धर्म्मज्ञ तपस्वी, यशस्वी, शास्त्रज्ञ, ब्रह्मज्ञ, परमधर्म्मशील सत्यशील जितेन्द्रिय, आचार-प्रिय शुनक नामक पुत्र का जन्म हुआ।"

श्रीशौनकजी बोले, "हे सूतनन्दन! कहो, महात्मा भृगुपुत्र क्योंकर च्यवन नामसे प्रसिद्ध हुए थे, मैं वह जानना चाहता हूं!"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, महर्षि भृगुजीकी प्रेमसुहानी, त्रिलोकजानी पुलोमानाम्नी एक स्त्री थी। वह पतिसहवास से गर्भवती हुई। हे भृगुनन्दन! धर्म्मधर यशसागर मुनिवर भृगु, समान प्रकृतिधारिणी अपनी धर्म्मपत्नी पुलोमाके गर्भवती होने पर, एक दिन नहाने गये थे, कि

ऐसे अवसरमें पुलोमा नामक राक्षस वहां आकर उनके आश्रममें जा घुसा और आश्रमके भीतर अनिन्दित-रूपखानि भृगुपत्नी को देखकर काम पीड़ा से बिन-चेतनसा हो पड़ा। सुदर्शना पुलोमा ने राक्षस को आश्रम में आते देखकर वनके फलमूलों से अतिथि-सत्कार किया। हे ब्रह्मन्! वह कामातुर राक्षस उस परम रूपमयी रमणी को देखकर हरने की इच्छा से प्रसन्न होने लगा और मनही मन में ऐसा कहने लगा, 'कदाचित् मेरा अभीष्ट सिद्ध होने पर है।' क्योंकि उस राक्षस ने पहिले उस सुहासिनी कामिनी को मन में पत्नीके आसन पर बैठाया था, पर उसके पिता ने शास्त्रविधिके अनुसार भृगुजी से उसका विवाह कर दिया था। यह अनुचित कार्य्य राक्षस के चित्त में सदा जागता था; इस समय अवसर पाकर उसने पुलोमा को हरलेना निश्चय कर लिया। अनन्तर उस राक्षस ने अग्नि गृह में प्रज्वलित अग्निदेव को देखकर उनसे पूछा, 'हे अग्नि! तुम देवों के मुखवत् बने हो, मैं तुमसे पूछता हूं, ठीक बोलो, मैंने पहिले इस सुन्दरी नारी को मन ही मन में पत्नी बनाई थी, आगे इसके बापने इसे अन्यायकारी भृगु को दान किया है। आप सच कहिये, यह एकान्तवासिनी, सुनितम्बिनी, भृगुपत्नी है कि नहीं? मैं इस आश्रम से इसे हरलेना चाहता हूं, क्योंकि पहिले मैंने इस सुमध्यमा को पत्नी करके वरण किया था, पश्चात् भृगुने इसे अन्यायरूपसे प्राप्त किया; इससे क्रोधरूपी अग्नि जल कर मेरा हृदय जलाता हुआ आजतक बना है।"

श्रीसूतपुत्रजी बोले, "इस प्रकार से वह राक्षस जलते हुए अग्नि को पुकार पुकार कर वार वार पूछने लगा, 'हे अग्नि! तुम सदा सर्व्वभूतों के हृदय में पाप और पुण्य के साक्षीस्वरूप होकर विराजमान हो, सो सच बोलो, मेरी पहिले की वरण की हुई जिस पत्नी को अन्याय करनेवाले भृगुने हर किया है, वह यही नारी है या नहीं? हे अग्ने! तुम यह बात मुझसे सच बोलो, मैं तुम्हारे सामने ही इस भृगुपत्नी को इस आश्रमसे हर लेजाना चाहता हूं।"

श्रीसूतपुत्रजी बोले, "उस राक्षस की ऐसी बात सुनकर अग्नि इन दोनों भयसे भीत होकर कि एक ओर मिथ्या बोलना ओर दूसरी ओर भृगु का शाप लेना है, अति दुःखीचित्त से बोले, कि 'हे दानव-नन्दन! तुमने पहिले इस पुलोमा को वरण तो किया था, पर वेदविधि के अनुसार मन्त्र पढ़कर विवाह नहीं किया था, इसके पिताने अति यशस्वी सुपात्रके लोभ से इस यशस्विनी पत्नी को तुम्हे न देकरके भृगु को सम्प्रदान किया है और भृगुने भी वेदविधि के अनुसार मुझको साक्षी बना करके मन्त्र पढ़कर इस से विवाह किया है। हे दानव-प्रधान! मैं जानता हूं, कि तुमने पहिले जिसको वरण कियाथा, यह वही पुलोमा है, मैं झूठ नहीं बोल सकता, क्योंकि लोकों में कभी झूठी बात का आदर नहीं है।"

आदि पर्व्व में पांचवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, हे ब्रह्मन्! अनन्तर वह राक्षस, अग्नि की ऐसी बात सुनकर शूकर का रूप धरके वायु और मनके समान तेजी से उस पुलोमा को हर ले गया। हे भृगुकुल तिलक! ऐसे समय में पुलोमा के गर्भस्थित बालक क्रोधसे अन्धा होकर गर्भरूपी शय्या से च्युत हुआ, इसी हेतु उसका नाम च्यवन हुआ। माता के गर्भ से गिरे हुए उस सूर्य्यके समान तेजस्वी बालक को देखते ही राक्षस, पुलोमा को छोड़कर भस्म होके पृथ्वी पर गिरा। हे भृगुनन्दन! वह दुःखजरी, सुन्दरी भृगुपत्नी, पुलोमा, भृगुके च्यवन नामक उस औरस पुत्र

को गोद में लेकर आश्रम की ओर चलने लगी। तब सर्व्व लोकों के पितामह ब्रह्माजी अपनी पत्रवधू उस परम-रूपवती भृगुपत्नी को रोती और नेत्रों से आंसू गिराती हुई देखकर समझाने लगे। तप करते हुए भृगुजी की धर्म्म पत्नी पुलोमा जिस पथसे चलने लगी, वहां उस की अश्रु गिरकर एक बड़ी नदी बन गई। अश्रु से निकली हुई उस नदीको वधूके साथ आश्रम की ओर बहते देखकर सर्व्वलोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उसका नाम "वधूसरा" रखा। प्रतापी भृगुपुत्र इस प्रकार से च्यवन नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

अनन्तर महर्षि भृगुने उस दशा में च्यवन नामक पुत्र और पत्नी को देखा और अति क्रोधवश होके पुलोमा से पूछा, "हे मीठी हंसोड़ि! राक्षस नहीं जानता था, कि तुम मेरी स्त्री हो कि नहीं; सो उसने जब तुम्हें हर लेने की इच्छा प्रकट करी थी, तब उसे किसने तुम्हारा परिचय दिया था? तुम सच सच बोलो, मुझे बड़ा क्रोध हो रहा है, मैं उसको शाप दूं किसने यह अनिष्ट किया? कौन मेरे शाप से भय नहीं खाता? पुलोमा बोली, हे भगवन्! अग्नि ने उस राक्षस को मेरा परिचय दिया था, इसीसे राक्षस कुरङ्गीके समान रोती हुई मुझको ले चला; अन्त में तुम्हारे इस पुत्र के तेज के प्रभाव से मुझ को छोड़कर वह राक्षस भस्म होगया, इसी से मैं उस दुरात्मा के हाथ से बच गई हूं। श्रीसूतपुत्रजी बोले, भृगुने पुलोमा की यह बात सुनकर अति क्रोधसे यह कहकर, कि "तुम सर्व्वभक्षक होगे" अग्निको शाप दिया।

आदिपर्व्व में छठवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि भृगुके शाप देने पर अग्निने क्रोधान्वित होकर कहा, "हे ब्रह्मन्! तुमने एकायक मुझे यह क्या शाप दिया? सच बात कहने को पूछे जाने पर मैंने धर्म्मानुसार बिना पक्षपात सत्यही कहा है, इसमें मेरा कौनसा दोष है? जो साक्षी सत्य विषय जानने पर भी झूठी गवाही देता है, उसके ऊपर के सात पुरखे और नीचे के सात पुरखे नरक में गिरते हैं। जो जन गूढ़तत्त्व जानकर पूछे जाने पर गवाही नहीं देता, वह भी उक्त पाप में डूबता है, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। मैं भी तुमको शाप दे सकता हूं, पर ब्राह्मण को सन्मान करता हूं, इसीसे नहीं दिया। हे ब्राह्मन्! तुम सब जानते हो, तिस पर भी कहता हूं, सुनो। मैं योगबलसे आत्मा को अनेक भागोंमें बांट कर मूर्त्तिभेद से अग्निहोत्र, सत्र, यज्ञ और गर्भाधानादि सम्पूर्ण क्रियाओं में विराजता हूं। वेदोक्त विधान से मुझको जो घृत चढ़ाया जाता है, उससे देवलोक और पितृलोक तृप्त होते हैं। मुझ को चढ़ाई हुई सोमरस, घृत, दुग्ध आदि वस्तु देवता और पितरों के शरीर के स्वरूप बन जाती हैं। देवता और पितरोंके निमित्त दर्श और पौर्णमास यज्ञ एकत्र किये जाते हैं, सो देवता और पितरों में कोई भिन्नता नहीं है। वे हर पर्व्व में कभी एकत्र और कभी पृथकरूपसे पूजित होते हैं। मुझे जो घृत चढ़ाया जाता है, उसे देवता और पितर लोग भोजन करते हैं, सो मैं ही उन देवता और पितरों के मुख के समान बना हूं। अमावस्या में पितरलोग और पौर्णमासी में देवलोग आहुति पाकर मेरे मुख से हो घृत भोजन करते हैं, सो मैं देवता और पितरों के मुख-स्वरूप हो करके क्योंकर सर्व्वभक्षक हूंगा?

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, कि अनन्तर अग्नि कुछकाल सोचकर ब्राह्मणों के अग्निहोत्र, सत्र, यज्ञ और दूसरी क्रियाओं से गायब हुए। आगे प्रजा अग्नि बिना, ओङ्कार, वषटकार स्वधा और स्वाहादि वर्ज्जित होकर अति दुःखी हुई।

इस पर ऋषि लोग अति चिन्तित चित्त से देवताओंके समीप उपस्थित होकर यह वचन बोले, "हे निष्पाप देवगण! अग्नि के नष्ट होने के कारण तीनों लोकों की प्रजा अग्निहोत्रादि क्रियाओंसे वर्ज्जित होकर क्या करना चाहिये, समझ नहीं पाती; इस समय जो करना उचित समझें, करें, विलम्ब का अवसर नहीं है!"

अनन्तर देवता और ऋषिलोग ब्रह्माजी के समीप गमन कर अग्नि के शाप और ब्राह्मणों की क्रियादि लोप होनेका समाचार जताकर बोले, "हे महाभाग किसी कारण से भृगुजीने अग्नि को यह कह कर कि 'तुम सर्व्वभक्षक होओ' शाप दिया है। यज्ञ के अग्रभाग-भोजन-करनेवाले अग्नि देवताओं के मुखस्वरूप होकर क्योंकर सर्व्व-भक्षक हो सकते हैं?"

विश्व सृष्टि-कारी ब्रह्मा जोने उनकी वह बात सुन कर क्षय और उदय-वर्ज्जित भूतभावन अग्नि को बुला करके मनभावन बातों में कहा, "हे अग्नि! तुम सर्व्वलोकों के कर्त्ता, संहर्त्ता, रचिता और अग्निहोत्रादि क्रियाओं के करानेवाले हो, अतएव हे लोकेश्वर, हुताशन! ऐसा करो, कि जिनसे अग्निहोत्रादि क्रिया लोप न हो जायं। तुम लोकपाल होने पर भी क्यों ऐसे मुग्ध हो रहे हो? तुम पवित्र और अकेले सर्व्व लोकों की गति हुए हो; सो तुम सर्व्व शरीरसे सर्व्व भक्षक नहीं होगे। हे शिखावान्! तुम्हारे अपान भाग में जो सब शिखायें हैं, वे हो सर्व्व भक्षक होंगी और तुम्हारी जो मांस-भोजी देह है, वह भी सर्व्व-भोजी होगी। जैसे सूर्य्य-किरण के स्पर्श से हरेक वस्तु शुद्ध होती हैं, तैसेही तुम्हारी शिखा से जल कर सब वस्तु पवित्र होंगी। हे अग्ने! तुम निज प्रभाव से निकल कर परम तेजस्वरूप हुए हो, सो निज तेजही से ऋषि के शाप को सत्य कर दो और तुम्हारे मुह में जिन वस्तुओं की आहुति चढ़ाई जाती है, उनसे देवों का और अपना भाग ग्रहण करो।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अग्नि "एवमस्तु" कहकर ब्रह्माजी की बात मान करके उनकी आज्ञा पालनेके निमित्त चले गये और देवता और ऋषिलोगभी निजनिज स्थानमें पधारे। ऋषिगण पूर्व्ववत् क्रियादि करने लगे। देवलोकमें सम्पूर्ण जीव आनन्द भोगने लगे। अग्नि भी शाप से मुक्त होकर अति प्रसन्न हुए। भगवान् हुताशन को इस प्रकारसे भृगु का शाप लगा था। यह अग्निके शाप-सम्बन्धी इतिहास पुलोमा राक्षस का नाश और च्यवन की उत्पत्ति कही गई।

आदिपर्व्वमें सातवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि हे ब्रह्मन्! भृगुनन्दन च्यवन ने सुकन्या नाम्नी स्त्री के गर्भ में प्रमति नामक एक तेजोपूर्ण महात्मा पुत्र उत्पन्न किया। प्रमति ने भी घृताची के गर्भ में रुरु नामक पुत्रोत्पादन किया, रुरुने प्रमद्वरा के गर्भ में शुनक नाम पुत्रको जन्म दिया। हे ब्रह्मन्! मैं उस अति तेजस्वी रुरु के चरित्र का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहता हूं, श्रवण कीजिये। हे विप्रर्षि! पहिले विद्वान्, तपस्वी और सर्व्व भूतों के हितैषी स्थूलकेश नाम से प्रसिद्ध एक महर्षि थे उन दिनों में गन्धर्व्वराज विश्वावसु के मिलन से मेनका नाम्नी अप्सरा गर्भवती हुई थी। अनन्तर निर्द्दयी, निर्ल्लज्जा मेनका यथाकाल में गन्धर्व्वराजके औरस जात उस गर्भ को स्थूलकेश ऋषिवर के आश्रम के निकट नदीतट पर गिराकर चली गई। आगे उस तेजस्वी स्थूलकेश ऋषिने निर्ज्जन नदीतट पर छोड़ी वस्तुओं से उजाड़ी उस देवकन्यासी परम सुन्दरी कन्याको देखा। ऋषिश्रेष्ठ स्थूलकेशने उस नवजात कन्या को देखकर दयावश होकरके उठा लिया और पालने लगे। वह सुन्दरी कन्या ऋषिके

पवित्र आश्रम में बढ़ने लगी। महाभाग महर्षि स्थूलकेशने क्रमानुसार विधिपूर्व्वक कन्यावत् उसकी जात-कर्म्मादि क्रिया निर्व्वाह कराई। वह कन्या रूप, सत्व तथा गुणादिमें सम्पूर्ण प्रमदाओं से अच्छी होने लगी, इस लिये महर्षिने उसका नाम प्रमद्वरा रख दिया।

अनन्तर एक समय धर्म्मात्मा रुरु उस आश्रम में प्रमद्वरा को देखकर काम से पीड़ित हुए। आगे रुरुने अपने प्यारे साथीसे पिता के समीप अपना अभिप्राय प्रगट करवाया। प्रमति ने भी यशस्वी स्थूलकेश जीसे वह कन्या प्रार्थना की। प्रमद्वरा के पिता स्थूलकेशने रुरु के निमित्त वह कन्या दे दी। उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र में उनके विवाह का दिन ठहरा अनन्तर विवाहके कई दिन पहिले अलौकिक रूपवती वह कन्या सहेलियों के सङ्ग खेल रहीथी। उसके क्रीड़स्थल में टेढ़े भाव से एक लम्बा सर्प सोया था। पर प्रमद्वरा ने उसे न देख कर मृत्यु-काल आजानेपर मानों काल-प्रेरणासे उस सर्प पर पैर रखा; सर्पनेभी उस न जानती-हुई बाला की देह में विषैले दातों से काटा। प्रमद्वराके सर्पसे काटी जाते ही उसका रङ्ग बदला, शोभा बिगड़ी, केश बिखरे, गहने गिरे, चेतना जाती रही, चेहरा देखने-योग्य न रहा, प्राण छूटा, एकायक देह धरती पर लोट पड़ी और स्वजनों के चित्त शोक से जलने लगे। जान पड़ने लगा, कि मानों वह सर्प-विष-जली बाला धरतीरूपी सेज पर सोती है; सो मरने पर भी उस सुमध्यमाने पुनः सुन्दर शोभा धारण की। स्थूलकेश और दूसरे तपस्वियों ने पद्मिनी के समान धरती पर लेटी हुई उस अचेत कन्या को देखा।

अनन्तर ब्राह्मण लोग दयायुक्त होकर उसे देखने को उपस्थित हुए। स्वस्त्यात्रेय, महाजानु, कुशिक, शङ्खमेखल, उद्दालक, कठ, श्वेत, अति यशस्वी भरद्वाज, कौणकुत्स्य, आर्ष्टिषेण, गौतम, प्रमति, उनके पुत्र रुरु और दूसरे वनवासी लोग आकर उस कन्या को सर्पविषसे जली हुई। और प्राणहीन देख कर रोने लगे। आगे रुरु अति शोकाकुल होकर वहां से अन्यत्र चले गये।

आदि पर्व्वमें आठवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि महात्मा ब्राह्मणोंके उस स्थानमें बैठने पर रुरु अति दुःखी होकरके घने वनमें घुसकर रोने लगे; और अति शोक से विवश होकर करुण स्वर से अनेक विलाप करते हुए प्यारी प्रमद्वरा को स्मरण करके शोकसे कहने लगे, "मेरा शोक बढ़ानेवाली वह क्षीणाङ्गी धरती पर सोती है, मेरे और मेरे मित्रों के लिये इस से क्या अधिक दुःख होगा! यदि मैंने दान और गुरु जनों की अच्छी सेवा की हो, तो मेरी प्यारी जी उठे और यदि मैं जन्म से व्रतशील और जितेन्द्रिय रहा हूं, तो आजही यह सुन्दरी प्रमद्वरा उठ खड़ी हो।

वन में रुरु, स्त्री के निमित्त शोकाकुल होकर ऐसा विलाप कर रहे थे कि ऐसे समय में देवदूत आकर उनसे यह बात बोले, "हे धर्म्मात्मन् रुरो! तुम दुःखी होकर जो कुछ कह रहे हो, सब व्यर्थ है, क्योंकि जिसकी आयु पूरी हो गई है, वह कभी जीती नहीं। अप्सराके गर्भजात इस गन्धर्व्वकन्या की आयु पूरी हुई है, अतएव बेटा! तुम शोक से चित्त को विकल मत करो, परन्तु महात्मा देवताओंने इसके लिये एक उपाय स्थिर किया है, यदि वह करना चाहो, तो प्रमद्वरा को पा सकोगे।" रुरु बोले, "हे देवदूत! देवताओं ने क्या उपाय ठहराया है, सच कहो; उसे सुनकर उसके अनुसार कार्य्य करूंगा, मुझे बचाओ।" देवदूत बोले, "हे भृगुनन्दन

रुरो! तुम उस कन्या को अपनी आयु का आधाभाग दो, ऐसा करने ही से तुम्हारी पत्नी प्रमद्वरा जी उठेगी।" रुरु बोले, "हे खेचरोत्तम! मैं उस विलासिनी कन्या को आयु का अर्द्धभाग देता हूं, मेरी प्यारी प्रमद्वरा शृङ्गार, रूप और आभूषणोंसे सुशोभिता होकर फिर जी जावे।"

सूतजी बोले, कि अनन्तर देवदूत और गन्धर्व्वराज दोनों धर्म्मराज के समीप जाकर बोले, "हे धर्म्मराज! यदि आप अनुमति करें, तो रुरु की मरी स्त्री प्रमद्वरा रुरुकी आधी आयु लेकरके कुशल लाभकर जी जासके।" धर्म्मराज बोले, "यदि तुम ऐसाही चाहते हो, तो रुरु की भार्य्या प्रमद्वरा रुरु का आधी आयु पाकर फिर जी जावे।" धर्म्मराजके ऐसा कहने पर, वरवर्णिनी प्रमद्वरा रुरु की आधी आयु पाकर मानों निद्रा से जगने के समान उठ बैठी। भविष्यत् में भी यह देखने में आवेगा, कि तेज-भरे रुरु जीकी दीर्घ आयु-का आधा अंश भार्य्या के निमित्त क्षय हुआ था।

अनन्तर रुरु और प्रमद्वरा के पिता प्रमति तथा स्थूलकेशने अति आनन्द से वाञ्छित दिन में उनका विवाह कर दिया। वह दम्पति परस्पर के हित-वाञ्छी होकर क्रीड़ा करने लगी। कमलकेश के समान रूपवती दुर्लभा भार्य्याको पाकर रुरुजी ने सर्पकुल को नष्ट करने का प्रण ठाना। सर्प देखतेही वह अति क्रोधवश होकर लाठी से अपनी शक्ति के अनुसार उसे नष्ठ करते थे। कए दिन उन्होंने घने वन में घुस कर देखा, कि एक बूढ़ा डोंढ़-साप सोता है; उसे देखकर क्रोधित होकर यमदण्ड के समान लुकड़ी उठा करके उसको नष्ट करने को चले। यह देख कर डोंढ़ बोला, "हे तपोधन! आज मैंने तुम्हारी कोई हानि नहीं की, सो क्यों क्रोधवश होकर मुझ को मारते हो?"

आदिपर्व्व में नौवां अध्याय समाप्त।

रुरुजी बोले, "हे भुजङ्ग! एक सर्पने मेरी प्राणप्यारी भार्य्या को डंसा था, इससे मैंने यह भयानक नियम किया है, कि जब जिस सर्प को देखूंगा, तभी उसको नष्ट करूंगा, इस लिये मैंने तुम्हें मारने की इच्छा की है, आज तुम प्राण खोओगे।" डोंढ़ बोला, "हे ब्रह्मन्! जो सर्प मनुष्यों को डंसते हैं, वे दूसरी जाति के हैं, अतएव सर्प नामकी गन्ध पाते ही विन-विष डोंढ़ की हिंसा करनी उचित नहीं हैं। डोंढ़ जाति दूसरी जातियोंके सर्पों से भिन्न प्रका-रका सुख भोगती है और इन दोनोंके लाभ के विषय भी अलग अलग हैं। पर अमङ्गल और दुःख भोगने के काल में दोनों समान हैं, अतएव धर्म्मशास्त्र में पण्डित होकर डोंढ़-जाति की हिंसा करनी आपको नहीं चाहिये।

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, कि महर्षि रुरुने सर्पकी ऐसी बात सुन कर उसको भय से जकड़ा हुआ डोंढ़ जानके वध नहीं किया। भगवान् रुरु उसको ढाड़स देकर बोले, "हे भुजङ्ग! मुझसे बोलो, कि तुम कौन हो, और किस कारण ऐसी दशाको प्राप्त हुए हो। डोंढ़ बोला, "हे रुरो! मैं पहिले सहस्त्रपाद नामक ऋषि था, आगे ब्रह्मशाप से सर्प बना हूं।" रुरु बोले, "हे सर्पश्रेष्ठ! ब्राह्मन ने क्रोधित होकर किस हेतु तुमको शाप दिया था? और तुम कितने दिनोंतक सर्प-शरीर को आश्रय किये रहोगे?"

आदिपर्व्व में दशवां अध्याय समाप्त।

डोंढ़ "बोला, "पहिले खगम नामक सत्य-वादी, तपोबली ब्राह्मण मेरे मित्र थे। एकदिन

वह अग्निहोत्र याग में आसक्त थे, ऐसे समय में मैंने बाल-स्वभावसे खेलता हुआ एक तृण का सर्प बना कर उनको डरवाया, इससे वह एक-बारगी मुर्च्छित हो पड़े। आगे वह व्रतशील, सत्यवादी तपोधन चेतना पाकर, मानों मुझको कोपाग्नि से जलाकर बोले, 'तुमने जिसप्रकार मुझको भारी भय में डालने के निमित्त वीर्य-रहित तृण का सर्प बनाया है, तिस प्रकार मेरे शाप से वीर्य्य-रहित सर्प होगे।' हे तपोधन! मैं उनकी तपस्या की सामर्थ से विदित था, इस हेतु उस काल में अति चिन्तित चित्त से सम्मानपूर्व्वक प्रणामकर दोनों हाथ जोड़के सामने खड़े होकर उस वनवासी ऋषि से बोला, 'हे ब्रह्मन्! मैंने मित्र कहके, खेल के निमित्त हंसी में ऐसा किया है, सो मुझे क्षमा करके यह शाप निवृत्त करें।' अनन्तर वह तपोधन मुझे अति उदास देखकर वारवार गर्म सांस लेते व्यथित होकर बोले, 'हे तपो-निधे! मैंने जो बात कही है, वह कभी झूठी होने की नहीं है, अतएव जो कहता हूं सुनो। हे अनघ! मेरी यह बात सदा स्मरण रखना, कि प्रमति के रुरु नामक शुद्धाचारी एक पुत्रवर उत्पन्न होंगे, उनको देखकर शीघ्रही तुम मेरे शाप से मुक्त होगे। आपही वह प्रमतिपुत्र प्रसिद्ध रुरुजी हैं, अतएव मैं इस समय अपना स्वरूप पाकर आपको कुछ हितोपदेश करूंगा सूतपुत्रजी बोले, कि यह कहकर वह यशस्वी द्विजवर सर्परूप छोड़कर अपना सुन्दर शरीर प्राप्त हुए और अति तेजस्वी रुरुजी से बोले, "हे सर्व्वजीवश्रेष्ठ! अहिंसाही परम धर्म्म है, अतएव ब्राह्मण हो करके किसी जीव की हिंसा न कीजिये। सुना है, कि ब्राह्मण को शान्तचित्त वेद-वेदाङ्गविद और सर्व्वभूतों का अभयदाता होना चाहिये। अहिंसा, सत्यवचन, क्षमा और वेदाभ्यास, यह कई ब्राह्मणके परम धर्म्म हैं। दण्डधारण, उग्रता और प्रजापालन रूपी जो क्षत्रियके धर्म्म हैं, वह आपके लिये मङ्गलदायी नहीं हैं, वह क्षत्रिय ही के कार्य्य हैं, हे द्विजोत्तम रुरो! आप श्रवण कीजिये। पूर्व्वकाल में राजा जनमेजय ने सर्पयज्ञ में सर्पों की हिंसा की थी, पर तपोवीर्य्यबल, वेदवेदाङ्ग-विद, द्विजश्रेष्ठ आस्तीक मुनिसे भयार्त्त सर्पों की रक्षा हुई थी।"

आदिपर्व्व में ग्यारहवां अध्याय समाप्त।

रुरुजी बोले, "हे द्विजश्रेष्ठ! राजा जनमे-जय ने किस हेतु और किस प्रकार से सर्पों को नष्ट किया था? धीमान् आस्तीक मुनिही ने फिर किस हेतु उनकी रक्षा की थी? मैं वह सब सुनना चाहता हूं।" ऋषिवर बोले, हे रुरो! तुम ब्राह्मणोंके मुखसे अति महत् आस्तीक-वृत्तान्त सुन लेना।" सूतपुत्र बोले, कि यह कह कर वह ऋषि गायब हुए। रुरु उस ऋषि को आगे न देखके उनकी खोज में उस वन में चारों ओर दौड़ने लगे, अन्तमें थक-कर धरती पर गिर जाकर मोहयुक्त तथा अचेतनसे बने और बीच बीच में उस ऋषि के विषयमें सोचने लगे। अनन्तर उन्होंने चेतना पाकर पिता के समीप आ करके सम्पूर्ण वृत्तान्त और आस्तीकजी की कथा पूछी। उनके पिताने भी प्रारम्भ से अन्त तक सम्पूर्ण कह सुनाई।

आदिपर्व्व में बारहवां अध्याय और सर्पयज्ञ-प्रस्तावना नामक पौलोमपर्व्व समाप्त।

श्रीशौनकजी बोले, "हे सूतनन्दन! भूपालों में सिंहरूपी राजा जनमेजय ने किस हेतु सर्प-यज्ञ का अनुष्ठान कर सर्पोंको नष्ट किया था; और द्विजश्रेष्ठ तपस्वी आस्तीकमुनि ही ने किस कारण से प्रज्वलित अग्नि से सर्पों की रक्षा की थी, उन सबों का सच्चा हाल विशेष करके वर्णन करो। जिस राजर्षि ने सर्पयज्ञ का

अनुष्ठान किया था, वह किसके पुत्र हैं? और वह द्विजवर आस्तीक ही फिर किसके पुत्र हैं? यह मुझसे बोलो।" सूतपुत्र बोले, "हे वाग्मिन्! मैं अति बृहत् आस्तीकवृत्तान्त को विशेष करके सम्पूर्ण कीर्त्तन करता हूं, श्रवण कीजिये।" श्रीशौनकजी बोले, पुरातन ऋषि ब्रह्मनिष्ठ आस्तीकजी की यह मनहरणी कथा विस्तृत रूपसे सुनना चाहता हूं।" सौति जी बोले, "हे शौनक! ब्राह्मण गण इस इतिहास को पुराण करके कीर्त्तन किया करते हैं। पहिले व्यासदेव के शिष्य बुद्धिमान सूतकुलोद्भव मेरे पिता लोमहर्षण जीने नैमिषारण्यवासी ब्राह्मणों से पूछे जाकर महाराज श्रीकृष्णद्वैपायन जी का रचा हुआ यह उपाख्यान कीर्त्तन किया था। मैं उनके मुखसे जैसा सुन चुका हूं, आपके प्रश्नानुसार उस सर्व्वपापनाशी आस्तीक-उपाख्यानको ठीक उसी प्रकारसे ज्यों का त्यों वर्णन करता हूं।"

आस्तीक जीके पिताका नाम जरत्कारु है। वह ब्रह्माके समान प्रभावी ब्रह्मचारी, नियमित भोजी, महातपस्वी, सदा कठोर तप में नियुक्त, ऊर्द्धरेता, यायावरवंशतिलक, धर्म्मज्ञ, व्रतशील और तपोबली थे। वह महात्मा मुनिवर सदा यत्र-सायं गृह हो करके (अर्थात् जहां कहीं सन्ध्या उपस्थित हो, वहीं रहके) भूमण्डल में भ्रमण करते थे। बीच बीच में तीर्थस्नान और तीर्थाटन करते रहे। प्रज्वलित अग्निके समान महातेज:प्रभावी वह ऋषि कभी गलितपत्रभोजन कर, कभी वाताहार कर, कभी आहार त्यागकर, शरीर सुखाकर, निद्रा छोड़कर, घूमा करते थे। एक दिन उन्होंने भ्रमण करते हुए देखा, कि उनके पितामहगण एक बड़े गढ़े में लटके हैं, उनके पैर ऊपर और मुंह नीचे को ओर हैं। जरत्कारु ने यह देखतेही पूछा, "तुम कौन हो? और किसहेतु इस गड्ढे में सदा छिपे-रहनेवाले मूषों से प्रायः काटे हुए खसखस के गुच्छे में लटककर नीचे मुंह किये रहते हो?" पितरों ने कहा, "हम यायावर नामक व्रतशील ऋषि हैं। हे ब्रह्मन्! वंश लोप होनेकी सम्भावना से हमारी अधोगति हो रही है। पर इन बुरे भाग्यवालों की जरत्कारु नामक एक दुर्भाग्य सन्तान है। उस मूर्ख ने केवल तपही को आश्रय किया है; पुत्रोत्पादन के निमित्त विवाह करना नहीं चाहता। अतएव वंशलोप की सम्भावना होने पर हम इस गड्ढे में लटके हुए हैं। हमलोग नाथ रहने पर भी पापिष्ठ के समान अनाथ होकर नीचे गिर रहे हैं। हे निष्पाप साधु-शिरोमणि! तुम कौन हो, कि हमारे मित्र के सदृश चिन्ता करते हो? हे ब्रह्मन्! हम जानना चाहते हैं, कि तुम कौन हो और किस हेतु हमारी शोचनीय दशा देख करके यहां खड़े होकर शोक प्रकाश कर रहे हो?" जरत्कारुजी बोले, "मेराही नाम जरत्कारु है, आपलोग मेरे ही पितृपितामहादि पूर्व्वपुरुष हैं; इस समय आज्ञा कीजिये, कि मुझको क्या करना होगा।" पितृगणबोले, "बेटा! तुम हमको, अपनेको और धर्म्मको बचाने के निमित्त सचेष्ट हो करके हमारा वंश बढ़ाओ; हे तात! पुत्रवान् पुरुष जैसी सद्गति प्राप्त करते हैं दूसरे बहुदिनों के बटोरे हुए तप अथवा दूसरे पुण्यफल से भी तैसी सद्गति पा नहीं सकते। हे पुत्र! इस हेतु तुम स्त्रीग्रहण और सन्तानोत्पादन में चित्त लगाओ। हम तुमको आज्ञा करते हैं, कि यही हमारा परम कल्याणकारी होगा। जरत्कारुजी बोले, "मैं भोगके निमित्त स्त्रीग्रहण वा धनार्जन न करूंगा, पर आपके हितानुष्ठान के लिये विवाह करूंगा। कन्या यदि मेरे नाम की हो, और उसके बन्धुवर्ग स्वेच्छापूर्व्वक दान करें, तो उस कन्या को भिक्षा के समान ग्रहण कर विधिपूर्व्वक विवाह करना स्वीकार करता हूं। इस

नियमके अनुसार यदि कन्या पाऊंगा, तो आपकी आज्ञा अन्यथा न होगी मैं विधिपूर्व्वक विवाह करूंगा। पर हे पितृगण! मैं दरिद्र हूं, कौन मुझे कन्यादान करेगा? परन्तु यदि कोई दान करे, तो मैं अवश्य ही उसको लूंगा, इसमें सन्देह नहीं उससे जो पुत्र उत्पन्न होंगे, वह आपको उद्धार करेंगे। जिससे आपलोग भी शाश्वतस्वर्ग लाभ कर परम आनन्द से समय बितावेंगे।"

आदिपर्व्व में तेरहवां अध्याय समाप्त।

———

सौतिजी बोले, कि अनन्तर वह ब्रह्मचारी व्रतशील जरत्कारु, संसार-आश्रम में प्रवेशार्थ विवाह करने के निमित्त धरणीमण्डल घूम आये, पर किसी स्थान में भी योग्य-पत्नी प्राप्त नहीं हुए। एक समय उन्होंने कन्याभिक्षार्थ वन में प्रवेश कर पितृवाक्य स्मरण करके कुछ चिल्लाकर तीन वार प्रार्थना की बातें कहीं, उस समय नागराज वासुकि उनको अपनी भगिनी ग्रहण करानेको उद्यत हुए। पर उस कन्या को अपने नाम को न समझकर महात्मा जरत्कारु एकायक ग्रहण न करके सोचने लगे, कि मैंने यह प्रतिज्ञा की है, कि यदि कन्या निज नाम की हो और उसके बन्धुगण स्वेच्छा-पूर्व्वक दान करें, तभी ग्रहण करूंगा। ऐसी चिन्ता कर वह महाप्राज्ञ तपःप्रभावी जरत्कारु जी वासुकि से बोले, "हे भुजङ्ग! सच बोलो, तुम्हारी इस वहिन का क्या नाम है?" वासुकि बोले, "हे जरत्कारो! मेरी इस अनुजा का नाम जरत्कारु है, मैं इस सुमध्यमाको दान करता हूं, भार्य्यार्थ ग्रहण करो। हे द्विजोत्तम! मैंने इस भगिनी को तुम्हारे निमित्त रख छोड़ा है, प्रतिग्रह करो।" वासुकिने यह बात कह कर उनको अपनी सुन्दरी भगिनी सम्प्रदान की। जरत्कारुने भी वेद विधि के अनुसार विवाह के संस्कार-कर्म्मों के पश्चात् उस कन्या से विवाह किया।

आदिपर्व्वमें चौदहवां अध्याय समाप्त।

———

सौतिजी बोले, हे वेदनिपुण! पहिले सर्प-माताने सर्पों को यह शाप दिया था, कि "महाराज जनमेजय के यज्ञमें अग्निदेवता तुमको जलावेंगे।" नागराज वासुकि ने उस शाप की शान्ति के निमित्त व्रतशील, तपस्वी जरत्कारु ऋषि को वहिन दान की। जरत्कारु ने भी वेदविधि के अनुसार उससे विवाह किया। कुछ कालान्तर उस कन्याके गर्भमें आस्तीक नामक एक पुत्रवर उतपन्न हुए। वह वेदावेदाङ्ग में पण्डित, तपस्वी, महानुभाव सर्व्व भूतों को तुल्य देखनेवाले और पितृमातृ-कुलों के भयनाशी हुए थे। अनन्तर बहुदिनों के पश्चात, पाण्डवनन्दन नरेश जनमेजयने वेदके अनुसार सर्पयज्ञ नामक महायज्ञ का प्रारम्भ किया। सुना जाता है, कि सर्पकुल को नाश करने के निमित्त उस यज्ञ के आरम्भ होने पर महातपस्वी आस्तीकने भाई, मामा और दूसरे सर्पों को सर्प-माता के शाप से बचाया था। और वह सन्तानोत्पादन तथा तपस्या से पितरों को उद्धार कर और व्रत, पाठ और वंश वृद्धि कर उनके निकट उऋण भो हुए; एवं भांति भांति के दक्षिणायुक्त यागों से देवताओं के और ब्रह्मचर्य्य से ऋषियों के ऋण से मुक्त हुए थे। हे भृगुश्रेष्ठ! व्रतशील जरत्कारु इस प्रकार से पितरोंके कठिनभार को पालन कर और आस्तीक नामक पुत्र पाकर धर्म्मार्ज्जन करके बहुतदिन पीछे पितरों के साथ शाश्वतस्वर्ग प्राप्त हुए। मैं यह आस्तीक का आख्यान ठीक ठीक कह गया; अब आज्ञा कीजिये, कि फिर क्या कहूं।

आदिपर्व्व में पन्दरहवां अध्याय समाप्त।

———

शौनकजी बोले, "हे सूतनन्दन! साधु स्वभावी आस्तीक ऋषि की कथा फिर विस्तृत-रूप से वर्णन करो; उसे सुनने को मुझे बड़ी इच्छा है। विशेष करके तुम जो कुछ कहते जाते हो, वह बड़ी मीठी और सुन्दर जान पड़ती है। तुम अपने पिता के समान जिस प्रकारसे पुराण कह रहे हो, उससे हमलोग बड़ी प्रसन्नता लाभ कर रहे हैं, तुम्हारे पिता सदा हमारी सेवा के निमित्त जिसप्रकार पुराण कीर्त्तन करते रहे, तुम भी ठीक उसी प्रकार कहे जाओ।"

औसौतिजी बोले, कि हे सदाजीविन! मैंने यह आस्तीक-कथा पिताजी से जैसी सुनी, ठीक वैसे ही कहे जाता हूं, सुनिये। पहिले सत्ययुग में कद्रु और विनता नाम्नी आश्चर्य रूपवती, सुन्दर लक्षणों से सुहाती दो कन्या थीं। वे दक्ष प्रजापति की पुत्री और कश्यप मुनि की स्त्री थीं। प्रजापति सदृश कश्यप ने उन दोनों धर्म्मपत्नियों पर अति प्रसन्न होकर उनको इच्छानुरूप वर देना चाहा। उनकी स्त्रियोंने भी पति से अभीष्ट वर पानेको बात सुनकर हृदयमें अति प्रीति और प्रफुल्लता लाभ की। पहिले कद्रूने प्रार्थना की, कि मेरे गर्भ से तुल्यतेजोवान् सहस्र नाग उत्पन्न हों। विनता ने प्रार्थना की, कि बल, प्रभाव, सुन्दरता, और तेजो में कद्रू के पुत्रोंसे श्रेष्ठ केवल दोही पुत्र मेरे गर्भ से जन्म लें। विनता ने कश्यप से प्रार्थनाके अनुसार पुत्र का वर पाकर उनसे "एवमस्तु" कह करके प्रार्थित वरलाभ से प्रसन्न हो कर अति वीर्य्यवान् दो पुत्रों के पाने की आशा में सफलता लाभकी। कद्रूने भी तुल्य प्रभावी एक सहस्र पुत्रों का वर पाकर अपनेको कृतार्थ समझा। अनन्तर महातपस्वी कश्यपजी इच्छानुरूप वर पाने से सन्तोष लाभ को हुई दोनों पत्नियों को यह कह कर कि "तुम अति यत्नसे गर्भ धारण किये रहना" वन को पधारे।

औसौतिजी बोले, बहुतदिनों के पश्चात् कद्रू ने एक सहस्र अण्डे और विनता ने दो अण्डे प्रसव किये। तब सेविकाओं ने प्रफुल्ल हृदय से उन अण्डोंको गर्म भांड़ीमें पांच सौ वर्षों तक रखा। अनन्तर कद्रू के अण्डों से सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए, परन्तु विनताके अण्डे उसी दशा में रहे। इससे तपस्विनी देवी विनताने लज्जा पाकर पुत्र पाने के निमित्त एक अण्डे को स्वयं तोड़कर देखा, कि पुत्र का पूर्व्वार्द्ध शरीर मात्र उत्पन्न हुआ है, शेषार्द्ध अभीतक प्रकाशित नहीं हुआ है। सुना जाता है, कि उस पुत्रने क्रोधित होकर विनता को यह शाप दिया, कि हे माता! तुमने पुत्र देखने के लोभ से जैसे मेरे अङ्ग बिगाड़ दिये, वैसेही जिससे अहङ्कार दिखा रही हो, उसी कद्रू ही की पांच सौ वर्षों तक दासी बनी रहोगी। माता! यदि तुम इस दूसरे अण्डे को भी फोड़ कर उस यशस्वी पुत्र को भी अङ्गहीन वा विकलाङ्ग न करो, तो वह होनेवाला पुत्र तुम को दासीपन से मुक्त करेगा। हे माता! यदि तुम अण्डेके भीतर के पुत्र का विशेष बल चाहती हो, तो धैर्य्यके साथ पांच सौ वर्षों तक उस पुत्र के जन्म की समय ताकती रहो।

अरुण ने विनता को इस प्रकार शाप देकर आकाश-मार्ग में चढ़ करके सूर्य्यके सारथिका कार्य्य प्रारम्भ किया। हे ब्रह्मन्! सदा प्रातः काल में वह अरुण सूर्य्यके रथ पर दिखाई देता है। आगे उचित समय पर सर्पभोजी गरुड़ भी उत्पन्न हुए। हे भृगुशार्दूल! वह पक्षीराज जन्म लेते ही अति क्षुधित होकर विनता को छोड़करके विधाता के नियमित भोजन की खोज में आकाश-मार्ग में चढ़ गये।

आदिपर्व्व में सोलहवां अध्याय समाप्त।

सूतजी बोले, कि हे तपोधन! उस काल में एक दिन कद्रू और विनता दोनों बहिनियों

ने देखा, कि अमृत मथने के काल में जो सर्व्व-श्रेष्ठ अश्वरत्न उत्पन्न हुआ था, सम्पूर्ण देवताओं ने जिस सुन्दर-मूर्त्ति अश्व की प्रशंसा की थी; जो सर्व्व लक्षणयुक्त, अजर, अति बलशाली, देवतावाहन श्रीमान् अश्वराज धरती भर में श्रेष्ठ है, वही उच्चैःश्रवा उनके पास से चला-जाता है।

श्रीशौनक जी बोले, "हे सूत! हमसे कहो, कि देवताओं ने कहां और क्यों समुद्र मथन किया था, जिससे वह महावीर्य्यवान् और अति सुहावना अश्वराज उच्चैःश्रवा उत्पन्न हुआ? सौति जी बोले, कि जलती हुई ज्योति की भांति सुमेरु नामक एक अति सुन्दर पर्व्वत सोनेसे मढ़ी हुई चोटी से सूर्य्य की प्रभा रोक कर खड़ा है, उसके भीतर का सुन्दर सुवर्ण ही उसके आभूषण के समान हुआ है। उस पर्व्वत पर देवता और गन्धर्व्वलोग विराजमान हैं, उसे माप कर अन्त पाने की सामर्थ किसी की नहीं है। अधर्म्मी लोग उस पर पैर भी रख नहीं सकते; वह पर्व्वत घोररूप, भयानक सर्पों से घेरा हुआ और सुन्दर औषधियों से सुशोभित है, उस महागिरिने ऊंचाई में आकाशमार्ग को ढांप रखा है; कोई प्राकृत पुरुष वहां मनसे भी पहुंचने की सामर्थ नहीं रखता; वहां अगणित नद, नदी, वृक्ष सुशोभित हैं और भांति भांति के कीड़े मकोड़े मीठे कलरव मचा रहे हैं। नागलोक के तपोनियम-युक्त महातपस्वी सम्पूर्ण देवता एकत्र होकर उस पर्व्वतकी आकाशसमान, सीमा-रहित और विविध रत्नों से सुहावनी मनहरणी चोटी पर चढ़के बैठ कर अमृत लाभ के निमित्त परामर्श करने लगे। देवतागण चिन्तायुक्त होकर चारों ओर युक्ति कर रहे थे, ऐसे समय में भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीसे यह बात कही, कि सुर और असुरलोग मिलकर महासागर को कलसे के समान करके मथन करें, समुद्र मथने से अवश्यही अमृत निकलेगा। वे सर्व्व औषधि और सर्व्व रत्न पाने पर भी न रुक कर मथन करते जायं, तो अन्त में अमृत प्राप्त करेंगे।

आदिपर्व्व में सतरहवां अध्याय समाप्त।

श्रीसौतिजी बोले, कि अनन्तर समुद्र मथन के मथनदण्ड करने के निमित्त सब देवताओंने मिलकर बड़ी ऊंची ऊंची चोटियोंसे सुशोभित लताजाली से वेष्टित, विविध पक्षीपूरित कराल-सर्पजन्तुओंसे आकलित, किन्नर देव, देवबालाओं से सेवित, ऊंचाई में ग्यारह योजन खड़े, ग्यारह योजन नीचे गड़े, सब पर्व्वतों से बड़े मन्दर को उखाड़ने की चेष्टा करी, पर किसी प्रकार सफलमनोरथ होनहीं सके। अन्तमें उन्होंने ब्रह्मा और विष्णु जीके समीप जाकर कहा, कि आप हमारे हित करने के निमित्त मन्दर पर्व्वतको उखाड़ने की आज्ञा दीजिये।

अनन्तर महाबली अनन्तने उठ कर वनोंसे भरे और कराल सर्पजन्तुओंसे घेरे उस पर्व्वत-राज मन्दर को बल से उखाड़ा। आगे देव-गण उनके साथ समुद्रतट पर उपस्थित हुए और समुद्र से कहा, कि हम अमृत के निमित्त तुम्हारा जल मथन करेंगे। समुद्रने कहा, कि यदि मुझको अमृत का अंश देना स्वीकार करो, तो मन्दरपर्व्वत की कठिन रगड़ सह से सकता हूं। समुद्र की इस बात पर सुरासुर लोग सम्मत हुए और वे सागरतट पर खड़े होकर कूर्म्मराज से बोले, "हे कूर्म्मराज! तुम इस मन्दर का अवलम्ब बने रहो, नहीं तो जल में वह डूब जायगा। कूर्म्मराज ने "तथास्तु" कह कर पीठ पर मन्दर को रखा। इन्द्रजी, कूर्म्मके पीठ पर उस मन्दरपर्व्वत को यत्नसे घुमाने लगे। देवता और असुर अमृत के निमित्त मन्दर को मथनदण्ड और वासुकि को मथन-रस्सी बना कर समुद्र मथने लगे। जिस

ओर वासुकि का मुख था, उधर दानव और जिस ओर उसकी पूंछ थी, उधर देवतालोग पकड़ कर मथने लगे, अनन्तदेव नारायण के स्वरूप हैं, इस हेतु नारायण अनन्तदेव का मुख उठाकर विष की तेजी सहने लगे। अनन्तर सुरोंसे चलाये जाते हुए वासुकिके मुखसे प्रतिक्षण धूंआं और अग्निशिखायुक्त श्वासवायु निकलने लगी। वह धूंआ बिजलीयुक्त मेघ बनकर थके मारे उदासे देवताओं पर बरसने लगा। चारों ओर सुरासुरों पर मन्दरगिरि की चोटी पर से पुष्प-वृष्टि होने लगी। देव-दानवों से मन्दर के सहारे मथे जाते हुए समुद्रसे बादल की ध्वनिके सदृश महाशब्द उठने लगा और समुद्र में रहनेवाले सैकड़ों जलजन्तु और पाताल-तलवासी वरुणलोक वाले वे जीव जिनके देह में जल-भाग प्रधान हैं, मन्दर से हिलोड़े जाकर लय पाने लगे। उस घूमते हुए पर्व्वत-शिखर पर के वृक्ष आपस में घिस कर पक्षियों-समेत गिरने लगे। जैसे बिजलीके दलसे नीलजलद घेरा जाता है, वैसे वृक्षादि की रगड़ से जली, शिखावाली आग से मन्दरपर्व्वत घेरा गया। रगड़ से जली हुई वह आग पर्व्वत परके सब हाथी और सिंहों को तथा दूसरे अनेक भांति के जीवों को जलाने और मारने लगी। अनन्तर अमरश्रेष्ठ इन्द्रजी बादल से निकले जल से चारों ओर फैले दाहने वाले अग्नि को बुझाने लगे। आगे नानाविध वृक्षों का दूध और पौधों का अपरिमित रस समुद्र-जल में चूने लगा। उस अमृत-सदृश-रसरूपी जल और जले हुए सुवर्ण के प्रभावसे देवताओं ने अमरता लाभ की। जब समुद्रजल उस सुन्दर रससे मिलकर दूध बना, तब उस दूध से घृत बनने लगा। अनन्तर देवगण सुख से बैठे हुए ब्रह्माजी से बोले, "हे ब्रह्मन्! नारायणजी के सिवाय, हम सब, क्या देवता क्या दानव बहुत थक गये हैं। बहुत दिन होगये, समुद्र-मथन शुरू हुआ है, पर अभी तक अमृत नहीं निकला।" देवताओं के इतना कहने पर ब्रह्माजी देवादिदेव नारायणजी से बोले, "हे विष्णो! तुम सुरासुरों को बल दो, इस विषय की तुमही एकमात्र गति हो।" विष्णुजी बोले, "जो लोग समुद्र-मथन कर रहे हैं, मैं उन सबों को बल दे रहा हूं तुम सब समुद्र-रूपी कलसे को हिलोड़ो और मन्दर-पर्व्वत को घुमाते रहो।"

श्रीसूतजी बोले, कि नारायण जी का वचन सुन कर देवता और दानव बल पाकरके और मिल जुलके फिर उस समुद्रजल को बड़े वेग से मथने लगे, इससे समुद्र से अगणित किरण-माला पहिरे उजाला-धरे और सुहावने शीतल प्रकाश-घेरे सोम (चन्द्रमा) उत्पन्न हुए; आगे घृत से पद्मासन पर विराजमान लक्ष्मीजी और सुरा-देवी के उपजने पर उसी घृतसे सुफेद घोड़ा और नारायणजीकी छाती में स्थित कौस्तुभ नामक तेज प्रकाशधारी शोभाकारी दिव्य मणि तथा सर्व्व कामनाओं के फलदाता मन्दारवृक्ष और सुरभि उत्पन्न हुई। हे ब्रह्मन्! लक्ष्मी, सुरा, सोम, और मनोजव घोड़ा यह सब आदित्य-पथानुसारी होकर जहां देवगण थे, वहां चले गये। अनन्तर मूर्त्तिमान धन्वन्तरी जी अमृतभरा शुभ्र कमण्डलु लेकर उठ आये। दानव लोग यह आश्चर्य्य लीला देख कर यह कहते हुए, कि "यह हमारा होगा, यह हमारा होगा" बड़ा कोलाहल मचाने लगे। अनन्तर श्वेत रङ्गका चार दांतवाला ऐरावत नामक बड़ा भारी हाथी निकला और देवराज उसपर अधिकार कर बैठे। इस परभी न ठहर कर देवताओं के वार वार मथन करने पर धूंआ सहित आगके समान कालकूट विष जग को घेर कर उत्पन्न हुआ। उसको सूंघते ही तीनों लोकके जीवोंकी चेतना जाती रही। तब ब्रह्माजी की प्रार्थना से मन्त्ररूपी भगवान् महे-

शङ्कर ने विष को निगलकर गले में धारण किया और उसी दिन से वह नीलकण्ठ नाम से प्रसिद्ध हुए। दानव लोग यह आश्चर्य लीला देख कर निराश हुए, आगे अमृत और लक्ष्मीके लिये देवताओं से बड़ी शत्रुता प्रगट करने लगे। अनन्तर नारायण जी मोहिनी माया आश्रय करके अपूर्व्व स्त्री-मूर्त्तिधारण-पूर्व्वक दानवों के निकट जा पहुंचे, आगे सब दैत्यों ने उस अपूर्व्व रूपवती युवती को देख करके उस रूप में मग्न होकर और जड़वत् बनकर उनको अमृत दे दिया।

आदिपर्व्व में अठारहवां अध्याय समाप्त।

सौतिजी बोले, कि अनन्तर दानव वृन्द एकत्र होकरके तनुत्राण (जिरह बख्तर) पहिन कर अस्त्रादि सहित देवताओं पर चढ़ दौड़े। इधर वीर्य्यवान् प्रभु नारायण नरदेव से मिलकर दानवों से अमृत हर लाये। देवता लोग भी उस भारी लड़ाई के कालमें नारायण जीसे अमृत पाकर पीने लगे। अमर लोग इच्छानुरूप अमृत पीरहे थे, ऐसे समय में राहु नामक दैत्य देवता का स्वरूप लेकरके वहां आकर अमृत पीने लगा। अमृत राहुत कण्ठ तक पहुचने पाया था, ऐसे समय में चन्द्र और सूर्य्यने देवताओंके हित करने के लिये यह बात प्रकाश कर दी। राहु का असुरपर प्रगट होने पर भगवान् चक्रधारी ने चक्र से उसी क्षण बलपूर्व्वक उस अमृत पीनेवाले राहुके सुशोभित सिर को धड़से अलग कर दिया। चक्रसे अलग किया हुआ पहाड़ की चोटी सदृश वह दैत्य-मस्तक आकाश में उठ कर बड़ा भयानक शब्द करने लगा। उस दैत्य के सिर-वर्ज्जित शरीरके धरती पर लोटने पर पहाड, वन और द्वीपों के सहित धरती थरथराने लगी इसी समय से राहुके मुखसे चन्द्र और सूर्य्य को स्थायी शत्रुता बन गई, इसी से राहु बीच बीच में चन्द्र और सूर्य्य को ग्रास कर लेता है इस समय में भगवान् विष्णु सुन्दरी स्त्रीका अनुपम रूप छोड़ कर भांति भांति के भयावने अस्त्रोंसे दानवों को कम्पित करने लगे। अनन्तर समुद्रतट पर देवदानवों में अति घोर युद्ध शुरू हुआ। सहस्रों तेज कटार और नोखदार तोमर आदि भांति भांति के अस्त्र बरसने लगे। आगे असुर लोग चक्र से काटे जाकर रक्त उगलने लगे, कोई कोई खड़्ग, शक्ति और गदासे घायल होकर धरती पर लोटने लगे। और असुरोंके गर्म्म सोने के सदृश रङ्गे हुए सिर कठोर पट्टिस से शरीरोंसे अलगही होकर सदा गिरने लगे। महावीर असुरवृन्द रक्तसे लाल होकर और मारे जाकर धातुओं से रङ्गे पर्व्वत शृङ्गके समान लेटने लगे। सूर्य्य के लाल होने पर उस रणभूमि में आपस में कटते हुए सुरासुरों में हाहाकार मच उठा; रणभूमि में दूरसे बरसते हुए परिघ अस्त्र और निकट के घूसों से एक दूसरे को मारते हुए सुरासुरों की आहट आकाश तक पहुंचने लगी। "काटो, चूर करो, पछियाओ, धरती पर गिराओ, खुद आगे बढ़ो" चारों ओर से केवल यही सब आहट सुनाई देने लगी। यह अति घोर युद्ध हो रहा था, कि नर और नारायणदेव रणभूमि में आ पहुंचे। भगवान् नारायणने नरदेव का सुन्दर चाप देखकर अपने दैत्य-नाशी चक्र को स्मरण किया; स्मरण करते ही शत्रुओंके दुःखदायी, सूर्य्यसदृश प्रभावी, न टूटने हारा और रणभूमि में अति कठोर सुदर्शन स्वर्ग से आ पहुंचा। आगे हस्तीसूंड़ समान भुजवान् कठोर वेगवान् नारायणजीने जलती हुई आग के समान भयानक, प्रबल पराये-देश-नाशी अति प्रभाशील उस उपस्थित चक्र को शत्रुदल पर फेंका। तब प्रलयकाल के अग्नि के समान तेजोवान् सुदर्शन पुरुषश्रेष्ठके हाथसे चलाये जाकर सहस्रों दैत्य-दानवों को बड़े

वेगसे काटता हुआ वार वार गिराने लगा। कहीं कहीं तो अग्निके समान जलाने लगा, कहीं असुरों को एकायक काटा कूटा और पिशाच की भांति रणभूमि तथा आकाशमें हर घड़ी घूमता घामता रक्त चूसने लगा। बिना जलके बादल सदृश शोभायुक्त महाबली, सहस्रों साहसी असुर आकाश में चढ़कर वार वार पर्व्वतों को गिराकर देवताओं को घायल करने लगे। नाना रङ्ग के मेघ सदृश वनयुक्त भयानक पर्व्वत आपस में लड़कर चूर चूर होकर घोर आहटके साथ गिरने लगे। एक दूसरे को ललकारते हुए घोर भयानक लड़ाई में फंसे देवासुरों की रणभूमि की चारों ओर बड़े बड़े पर्व्वतों के गिरनेसे वन सहित धरती चोट खाकर कांपने लगी। अनन्तर असुरों के साथ उस घोर लड़ाई में नरदेवने सुवर्ण-मढ़े वाणों से पर्व्वतों की चोटो काट काटकर उनसे आकाशतल छालिया। आगे दैत्य लोग देवताओं से मारे काटे जाकर और आकाश में घूमते हुए प्रज्ज्वलित अग्नि के समान सुदर्शन को क्रोधित देखकर पृथ्वीके भीतर और खार समुद्र में जा घुसे। तब देवताओंने जय पाकर मन्दरपर्व्वत का यथोचित सत्कार करके उसको उसके स्थान में जड़ दिया। सम्पूर्ण बादल भो चारों ओर आकाश और स्वर्ग में शब्द मचाते हुए अपने अपने स्थानों को पधारे; पश्चात् देवता लोग अति आनन्द से अमृत रखने लगे। अनन्तर इन्द्रजोने देवताओंसे मिलकर अमृत-रक्षाके लिये नरदेव के हाथ में अमृत-भाण्ड को सौंप दिया।

आदि पर्व्व में उन्नीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीसौतिजी बोले, हे शौनक जो! जिस प्रकार अति बलशाली अश्वराज उच्चैःश्रवा की उत्पत्ति हुई थी, वह अमृत-मथन की कथा आपको कह सुनाई। उस उच्चैःश्रवा को देखकर कद्रु विनतासे बोली, "बहिनि! जल्द कहोतो सही, यह उच्चैःश्रवा किस रङ्ग का है? विनता बोली, "मैं जानती हूं, कि यह उच्चैःश्रवा सुफेद रङ्ग का है। क्यों कल्याणि! तुम क्या समझती हो? तुम्हारी सुनकर मैं इस बारे में बाजी लगाऊंगी।" कद्रु बोली, "री मीठी हंसोड़ि! जान पड़ता है, कि इस घोड़े की पूंछ काले रङ्ग की है। आओ इस बारे में बाजी लगावें, कि जो हारेगी, वह सदा दूसरी की दासी बनी रहेगी।" सौतिजी बोले, कि इस प्रकार कद्रु और विनता आपस में दासीपन की बाजी लगा करके यह कहकर, कि "कल घोड़ा देख लिया जायगा" अपने अपने घरों को पधारी। आगे कद्रुने ठगने की इच्छा से अपने सहस्र पुत्रों को बुलवाकर आज्ञादी, "बेटा! तुम शीघ्र काले लोम बनकर उच्चैःश्रवाको ढांप लो, कि जिससे मुझको दासी बननी न पड़े।" कद्रु के ऐसा कहने पर, जिन सर्पों ने उसकी बात न मानी, उनको उसने यह शाप दिया, कि पाण्डवपुत्र बुद्धिमान राजर्षि जनमेजय के सर्पयज्ञ के समय अग्निदेवता तुमको जलावेंगे। कद्रुने क्रोधित होकर दैवसंयोग से सर्पों को जैसा कठोर शाप दियाथा, उसे स्वयं ब्रह्माजीने सुना और सम्पूर्ण देवोंके सहित कद्रु की वह बात अनुमोदन की; क्योंकि कटीले सर्पगण उनदिनों बड़े विषैल और प्रभावी हो गये थे और उनकी संख्याभी बहुत बढ़ी थी। "दूसरों को पीड़ा देनेवाले तेज विषैले सर्पों का अपनो माता से इस प्रकार शाप पाना अनुचित नहीं हुआ, क्योंकि यह प्रजाओं के मङ्गलार्थ ही हुआ था। जो लोग सदा दूसरों की हिंसा किया करते हैं, वे दैवहीसे प्राणघातकी सजा पा जाते हैं।"—ब्रह्माजी ऐसा कहकर कद्रुको बड़ी प्रशंसा करके कश्यपऋषिजी को बुलवा कर बोले, "हे अनघ! हे परन्तप! जिन तेज विषैले कटीले सर्पों ने

तुम्हारे औरससे जन्म लिया है, दैवसंयोग से शाप पा गये हैं। बेटा! इस हेतु तुम्हें क्रोधित होना नहीं चाहिये। देखो, सर्पयज्ञ में सर्पों का नाश होगा, यह बात पुराणही में प्रसिद्ध है।" सृष्टिकर्त्ता भगवान् ब्रह्माजीने महानुभाव प्रजापति कश्यपकी उक्त बातों से प्रसन्न कर विष हरने वाली विद्या दी।

आदिपर्व्वमें बीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीसूतपुत्रजो बोले, कि हे तपोधन! दूसरे दिन सवेरे सूर्य्य उगतेही, दासीपन को बाजी लगाये हुई, हिंसा और क्रोध से उछलो हुई कद्रु और विनता दोनों बहिन उच्चैःश्रवा को देखने चलीं, यात्रा करके कुछ दूर चलकर उन्होंने पासही में बड़ा गहरा महासमुद्र देखा। जो समुद्र प्रलयकालिक हवा से हिलोड़ि जाकर घोर शब्द मचा रहा है; जो कछुए, घरियार, तिमि, तिमिङ्गल, मकर आदि भांति भांति के रहस्रों जीवों से सदा भरा रहता है; जिसमें नाना प्रकारके भयानक देह-धारी जलचर जन्तुओं के रहनेके कारण कोई उतर नहीं सकता; जो अपार, सोच के बाहर, पवित्र जलधर अपूर्व्व समुद्र सर्व्व रत्नका आधार, वरुणजीका घर, सर्पों का सुन्दर और श्रेष्ठ आगार, वाड़वाग्नि का आधार, असुरों का मित्रवर, स्थलचर जीवोंका भयाकर, जल का अक्षय भाण्डार, देवभोगयोग्य अमृत का मंगल-मय श्रेष्ठ अलौकिक आधार, जलचरों के घोर शब्दसे भयाकर और भयानक शब्दागार, भारी भारी लहरों के कारण घुसने के अपार, सर्व्व-भूतों का भयदायी और तटपर प्रवल वेगसे बहती हुई हवा से चञ्चल हुआ है और हवासे चोट खाने के हेतु लहरों से ऊंचा होकर मानों चारों ओर लहररूपी हाथ उठाकर नाच रहा है; जो सुन्दर रत्नाकर चन्द्रकी घटी बढ़ी के कारण अति ऊंची लहरों से उछल उठता है, जो पाञ्चजन्य शंख की उत्पत्तिका स्थान है; अमित तेजोवान् भगवान् नारायणने भूमण्डलके उद्धारके निमित्त वाराहका खरूप लेकर जिसका जल हिलोड़ा और गदला किया था; व्रतशील ब्रह्मर्षि अत्रि सैकड़ों वर्षो में भी जिसके अथाह जलके पाताल-तलके तलतक पहुंच नहीं सके थे; अपरिमित तेजो-पूर्ण पद्मनाभ विष्णु प्रलयकाल में योग की निद्रा में जहां सोते हैं, जो समुद्र वज्राघात के भयसे डरे हुए मैनाक पर्व्वत का निर्भय करनेवाला और भयभरे युद्ध में हारे असुरोंका एकमात्र आश्रय तथा वड़वामुखसे प्रज्ज्वलित अग्नि में जल रूपी घृतकी आहुति चढ़ाने वाला हुआ है; जिस लम्बे चौड़े अपरिमित अपार समुद्रवर का तल छुआ नहीं जाता, सहस्रों महानदी जिस समुद्रवरके समीप नायिका की भांति अहङ्कार पूर्व्वक सदा दौड़ रही हैं, वह बहुत जलभरा हुआ, लहरों से नाचता हुआ, अति गहरा, तिमि-मकरादि उग्र जीवों से पूरा, जलचरों के घोर शब्द से गूंजता हुआ, आकाश समान फैला हुआ, अथाह अपार जलसागर कद्रु और विनता को देख पड़ा।

आदिपर्व्व में इक्कीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, इधर सर्पों ने सलाह की, कि "माता की आज्ञा पालनी ही पड़ेगी, क्योंकि उसकी अभीष्ट सिद्ध न होनेसे वह स्नेह वर्ज्जित होकर हम लोगों को नष्ट करेगी। वह प्रसन्न हों, तो हमको इस शापसे बचा सकती हैं, सो निश्चय ही हमलोग उस घोड़े की पूंछको काली कर देंगे।" यह सलाह करके वे उच्चैःश्रवा के निकट जाकर उसकी पूंछके लोमवत् बने रहे। हे द्विजोत्तम! इस अवसर में वे दोनों सौत बहिन, बाजी लगाकर अति सन्तोषपूर्व्वक समुद्र के दूसरे पार चली गईं। जो समुद्र प्रवल हवासे सञ्चालित, घोर

शब्द पूर्ण, तिमि तिमिङ्गिल मकरादि भांति भांतिके सहस्त्रों भयानक, जीवों से भरा हुआ, अति भयानक, रत्नाकर वरुणजीका घर, नाग-मन्दिर, नदी नायक, वड़वानल और असुरों की वास-भूमि, भयानक जीवों और जलका अक्षय भण्डार, देवभोग्य अमृत की मङ्गलमय दिव्य श्रेष्ठ खानि है, उस धारणातीत, चिन्ता-उपमा-रहित, पवित्र जलपूरित, सहस्रों महा-नदियों से पूजित अति तरल लहरों से भरे हुए, सोते से नाचते हुए, आकाश समान फैले हुए, वाड़वाग्नि बढ़ानेवाले महासमुद्र को देखती हुई दक्षपत्री कद्रू और विनता आकाशमार्ग से शीघ्र चलने लगीं।

आदिपर्व्व में बाइसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवा जी बोले, कि द्रुत चलने वाली कद्रू और विनता महासमुद्रके पार उतरकर शीघ्र ही उच्चैःश्रवा के समीप जा पहुंचीं; वहां पहुंचकरके उन दोनों ने उस बड़े वेगवान् और चन्द्रमाकी चांदनी समान सुफेद घोड़े की काली पूंछ देखी। इससे विनता बड़ी उदास हुई और कद्रूने उसको अपनी दासी बनाई। बाजी में हारकर विनता दुःख से जलती हुई दासी के कार्य्य करने लगी। इस अवसर में बड़े प्रभावी गरुड़जी कालपूर्ण होने पर माता की सहायता बिना स्वयं अण्डेको फोड़कर निकल आये। महासत्त्वशाली, महावली, विजली के समान पिङ्गल नेत्रधारी, अति भय-कारी, कालाग्नि समान प्रज्ज्वलित, महाघोर, रुद्रमूर्त्ति, भारी शरीरधारी, जलती हुई आग की भांति अति भयानक, कामरूपी, कामवीर्य्य-भरे, कामगतिशील वह पक्षीराज दशों ओर प्रकाशित करके दूसरे वाड़वाग्निके समान एका-एक देह बढ़ाकर घोर शब्द मचाते हुए आकाश को उड़ गये। यह देखकर देवता लोग भय खाकर सुख से बैठे हुए विश्वरूपी अग्निदेव की शरण लेकर उनके पांव छूकर बोले, "हे अग्ने! तुम अपने शरीर को और न बढ़ाओ; क्या तुमने हमको जलाने की इच्छा की है? वह देखो, तुम्हारे बढ़ेचढ़े तेज-समूह आरहे हैं।" यह सुनकर अग्निदेव बोले, "हे दैत्य-नाशी देवगण! तुमने जो सोचा है, वह ठीक नहीं है, यह मेरे सदृश प्रभावी महात्मा गरुड़ हैं; जन्म लेकर माता विनताका आनन्द बढ़ा रहे हैं; तुम लोग तेजपूरित गरुड़जी को देखकर मोहित हो गये हो; कश्यपके पुत्र, महावली, सर्पनाशक यह गरुड़ जी देवताओं के हित करने वाले तथा दैत्य, दानव और राक्षसों के शत्रु होंगे; तुम डरो मत, आओ हम सब मिलकर उनका दर्शन करें।" अग्निके इतनी कथा कहने पर देवगण ऋषियों से मिलकर पधारे और दूर ही से गरुड़जी की स्तुति करने लगे।

देवगण बोले, हे पक्षीराज! तुम ऋषि हो, तुम महाभाग्यवान् हो, तुम देवता हो, तुम स्वामी हो, तुम ताप देनेवाले सूर्य्य हो, तुम परमेष्ठि हो, तुम प्रजापति हो, तुम चन्द्र हो, तुम हयग्रीव हो, तुम आशुग हो, तुम जगदीश्वर हो, तुम आदिभूत हो, तुम ब्रह्म हो, तुम ब्राह्मण हो, तुम अग्नि हो, तुम वायु हो, तुम, धाता हो, तुम विधाता हो, तुम देव-ताओंके शिरोमणि विष्णु हो, तुम महान् तत्व हो, तुम अहङ्कारतत्व हो, तुम नित्य हो, तुम निर्व्विकार हो, तुम महत् यश हो, तुम तेज हो, तुम बुद्धिवृत्ति हो, तुम हमारे सब से प्रधान मुक्तिदाता हो, तुम बलसागर हो, तुम साधु हो, तुम अनेक सत्त्वसुक्त हो, तुम ऐश्वर्य्यवान् हो, तुम अजीत हो, हे पूर्ण कीर्त्तिवान्! तुम्ही से आगत अनागत सवों की उत्पत्ति होती है। तुम चिन्मात्र हो, तुम्ही सूर्य्यके समान किरणों से स्थावर जङ्गमात्मक सम्पूर्ण जगतको प्रकाश कर, रहे हो और फिर तुम्ही सूर्य्यके प्रकाश को

हरकर इस चराचर विश्व को लय कर रहे हो। हे अग्नि-समान प्रभाववान्! जिस प्रकार प्रलय कालमें सूर्य्यदेव क्रोधित होकर प्रजाओं को जलाते हैं, तुम भी उसी प्रकार उनको जला रहे हो और युग बदलने के काल में सृष्टिनाशी प्रलयाग्नि जिस प्रकार भयानक रूप से जलकर संहार करता है, तुम भी उसी प्रकार सृष्टि को नष्ट कर रहे हो। बिजली-सदृश शोभावान् अन्धकारनाशक, आकाशव्यापक, महाबली, कार्य्य कारणरूपी, वरदेने वाले, अजेयविक्रम, गगनमार्ग में विचरने वाले पक्षीराज! हम तुम्हारी शरण लेते हैं। हे जगत् प्रभो! तुम्हारे तेज से यह सम्पूर्ण जगत् तप रहा है। अतएव तुम तपे हुए सुवर्ण-वर्ण तेजोंसे इस सम्पूर्ण जगत् तथा देवगण और महात्माओं की रक्षा करो। देखो, आकाश में चलनेवाले देवतालोग तुम्हारे तेजोंसे हार मान और भय खाकर मार्ग भूल रहे हैं। हे पक्षीवर! तुम दयावान् महानुभव कश्यप ऋषिके पुत्र हो, सो क्रोधयुक्त मत बनो, जगत् पर दया दिखाओ, तुम समर्थ हो, सब कुछ कर सकते हो, पर शान्ति आश्रय कर हमको बचाओ। हे पक्षीराज! तुम्हारे बिजली की कड़कड़ाहट के समान शब्दसे दिशा आकाश स्वर्ग और इस पृथ्वी तथा हमारे हृदय में प्रतिक्षण हलचल मच रहा है, सो तुम अपने अग्नितुल्य शरीर को सम्भालो। हे यमराजसमान-क्रोधवान्! तुम्हारी द्युति देखकर हमारे चित्त एकबारगी अस्थिर और चञ्चल हो रहे हैं, हे पक्षीश्रेष्ठ! प्रार्थना करते हैं, कि हमलोगों पर प्रसन्न होओ। हे भगवन्! तुम हमारे सुख देनेवाले और मङ्गलदायी होओ। गरुड़जी ने, ऋषि और देवताओं की ऐसी स्तुति सुनकर अपने तेजसमूहको हर लेने की प्रतिज्ञा की।

आदिपर्व्व में तेईसवां अध्याय समाप्त।

गरुड़जी देवताओं के यह सब वचन सुनकर और अपनी देहको देखकर उसे सम्भालने लगे और बोले, कि मेरी देहको देखकर जीवों को भय खाना नहीं पड़ेगा। तुम लोग मेरे भारी आकार को देखकर डर गये हो, सो मैं अपना तेज हर लेता हूं। श्री उग्रश्रवाजी बोले, कि पश्चात् कामचारी कामवीर्य्य पक्षीराज स्वरूप सम्भालकर अपने बड़े भाई अरुण की पीठ पर चढ़ाकरके पितृगृह से महासमुद्र के दूसरे तट पर माता के समीप पधारे। इस समय सूर्य्यदेवने तेज किरणजाल फैलाकर तीनों लोक जलाने की कल्पना की थी, इस हेतु अति द्युतिमान् गरुडने अरुण को पूर्व्व ओर फेंक दिया।

शौनकजी बोले, कि भगवान् सूर्य्यदेवने इस समय किस कारण से तीनों लोकों को जलाना चाहा था? और देवताओंने उनकी कौनसी हानि पहुंचाई थी, कि वह क्रोधित हुए थे? प्रमति बोले, कि हे निष्पाप! जब चन्द्र और सूर्य्यने राहुके अमृत पीनेका वृत्तान्त प्रकाश कर दिया था, तब राहुने चन्द्र और सूर्य्यके विरुद्ध शत्रुता ठान ली थी। उस शत्रुता के हेतु जब राहु सूर्य्य को ग्रास करने लगा, तब वह यह सोच कर क्रोधित हुए, कि मैं तो देवताओं के कार्य्य के लिए राहु से शत्रुता कर बड़ी हानि और कष्ट सह रहा हूं, पर विपत के समय देवों में से कोई भी मेरी सहायता नहीं करते, बरण राहु जब मुझको ग्रास करता है, तब वे देख देख कर हंसा करते हैं, सो मैं निःसन्देह सम्पूर्ण लोकों को नाश करूंगा। सूर्य्यदेव ऐसी प्रतिज्ञा ठानकर अस्ताचल की चोटी पर चढ़ गये और वहां से लोकों में संहार का भय उपजाने लगे। यह देखकर महर्षिगण देवताओं के समीप जाकरके बोले, कि आज आधी रातके समय सर्व्वलोकभयकारी त्रिलोकनाशी महादाह शुरू होगा। यह

सुनकर देववृन्दने ऋषियों के सहित ब्रह्माजी के समीप जाकर निवेदन किया, कि हे भगवन्! आज दाह का यह कैसा महाभय आ पड़ा? अभी तो सूर्य्यदेव दीख नहीं पड़ते, पर तौभी मानों सृष्टि लोप हो रही है; जब वह उगेंगे, तब न जानें, क्या होगा? पितामह जी बोले, कि लोकोंको नाश करने के लिये सूर्य्यदेव उगने पर हैं, वह निकलते ही सर्व्वलोकों को भस्म करेंगे, पर पहिले ही इसका प्रतिविधान किया गया है; धीमान्, वृहत शरीर-धारी अरुण नामक अति प्रभावो कश्यपपुत्र सूर्य्य के सामने विराजेंगे। वह सूर्य्य के सारथी का कार्य्य कर तेज हर लेंगे, इसीसे देवता ऋषि और सर्व्वलोकों का मङ्गल होगा। प्रमति बोले, कि अनन्तर पितामह की आज्ञानुसार अरुण ने वह सब कार्य्य किये और सूर्य्यदेव भी अरुण से आच्छादित होकर उदय हुए। सूर्य्य जिस हेतु क्रोधित हुए थे और अरुण जिस कारण उनके सारथी बने, वह कह चुके, अब पहिले जो प्रश्न किये गये थे, उनके उत्तर सुनिये।

आदिपर्व्व में चौबीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीसौतिजी बोले, अनन्तर अति वीर्य्यशाली, महाबली, कामचारी पक्षीराज समुद्र के दूसरे पार माता के समीप जा पहुंचे। वहां उनकी माता विनता बाजी हार कर और अति दुःखी होकर दासी बन दिन काट रही थी। एक दिन कद्रु गरुड़ के सामने ही पैर छूती हुई विनता का नाम लेकर बोली, "री विनता! उस निराले समुद्र के भीतर नागोंके घरमें मुझको ले चल।" यह सुनाकर गरुड़ की माता सर्प माता को वहां ले चली। गरुड़भी माता की आज्ञानुसार सर्पों को ले चले; पर ले चलने के समय वह विनतापुत्र पक्षीराज सूर्य्यमण्डल के निकट होकर जाने लगे। इससे सर्पगण सूर्य्य के तेज से तपकर मुर्झाने लगे। कद्रु पुत्रों की वैसी दशा में देखकर देवराज की स्तुति करने लगी, कि हे सर्व्व देवों के नाथ! तुमको नमस्कार करती हूं, हे बलसूदन! तुमको नमस्कार करती हूं, हे नमुचिनाशी सहस्राक्ष शचीकान्त! तुमको प्रणाम करती हूं, जल बरसा कर तुम सूर्य्यसे जलते हुए सर्पों की रक्षा करो; हे देवोत्तम! तुम हमारे एकही रक्षक हो; हे पुरन्दर! तुम अपरिमित वृष्टि को सृष्टि कर सकते हो। तुम वायु हो, तुम बादल हो, तुम अग्नि हो, तुम आकाश की विजली समूह हो, तुम मेघों के चलानेवाले हो, तुमही प्रलय-काल के भारी बादल हो, तुम तुलनारहित घोर वज्र हो, तुम गरजानेवाले जलधर, हो, तुम तीनों लोक के रचने हारे हो तुम नाश करनेवाले हो, तुम जीतने के अयोग्य हो, तुम सर्व्वभूतों के प्रकाशरूपी हो, तुम आदित्य हो, तुम विभावसु हो, तुम आश्चर्य्य-युक्त महान् तत्त्व हो, तुम राजा हो, तुम देवों में श्रेष्ठ हो, तुम विष्णु हो, तुम सहस्राक्ष हो, तुम परात्परपर-देव हो, तुम अमृत हो, तुम्ही परम पूजित सोमदेव हो, तुम महूर्त्त हो, तुम तिथि हो, तुम लव हो, तुम क्षण हो, तुम शुक्लपक्ष हो, तुम कृष्णपक्ष हो, तुम कला हो, तुम काष्ठा हो, तुम त्रुटि हो, तुम वर्ष, ऋतु मास, दिन और रात हो, तुम उत्तर पर्व्वतयुक्त धरती हो, तुम सूर्य्ययुक्त निर्म्मल आकाशमण्डल हो, तुम तिमि तिमिङ्गिल मीन मकरादि नाना जल-जन्तुओं से भरे और लहराते हुए महासमुद्र हो, तुम अति यशस्वी हो, इस हेतु प्रज्ञायुक्त महर्षिगण आनन्दचित्त से सदा तुम्हारी उपासना किया करते हैं, तुम मङ्गलार्थ यज्ञों में स्तुति प्राप्त होकर वषट् किये हुए घृत और सोमरस को पीते हो, हे अनन्तबली! विप्र-वृन्द फल पानेके निमित्त सदा तुम्हारे नामसे यज्ञ किया करते हैं, और सम्पूर्ण वेदाङ्ग में तुम्हारे गुण कीर्त्तित हैं, इसीहेतु यागशील

श्रेष्ठ द्विजवृन्द सर्व्वप्रकार से प्रयत्नपूर्व्वक वेदाङ्गों की मीमांसा किया करते हैं।

आदिपर्व्व में पचीसवां अध्याय समाप्त।

श्री उग्रश्रवाजी बोले, कि कद्रु के इस प्रकार स्तुति करने पर भगवान् मेघवाहनने धौले बादलों से सम्पूर्ण आकाशमण्डल को आच्छादित कर लिया और मेघों को आज्ञा दी, कि तुम भली भांति जल बरसाओ। मेघवृन्द बिजली समूह से उज्वल होकर आपस में घोर गर्ज्जन करते हुए जल बरसाने लगे। अति अद्भुत बड़े शब्दशील बादलों के बहुत जल बरसाने पर आकाश देखकर जान पड़ने लगा, कि मानों प्रलयकाल आगया है। बिजली और हवासे डोलते हुए बादलों की सनसनाहटरूपी बाजों के साथ अगणित धाराओं की लहरों से मानों आकाश भी नाचने लगा और बादलों से सदा जल की धार बहने से आकाशतल चन्द्र और सूर्य्य से खाली जान पड़ने लगा। देवराज की वर्षा से सर्पों को बड़ा आनन्द हुआ; धरती जल से भर गई; निर्म्मल शीतल जल पाताल तल तक पहुंचने लगा। इस प्रकार अपार जलकी लहरों से पृथ्वी आह्लादित होने पर सर्पगण माता के सहित रामणीयक द्वीप को पधारे।

आदिपर्व्व में छब्बीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीसौतिजी बोले, कि अनन्तर गरुड़ पर चढ़े हुए सर्पगण जलधारा से नहा कर प्रसन्न हृदय से थोड़े काल में रामणीयक द्वीप में जा पहुंचे। मकरों के वासस्थान और विश्वकर्म्माजी से बने हुए उस द्वीप में नागोंने पहिले पहल बड़े भयानक खार समुद्र को देखा; पीछे गरुड़जी के साथ अति सुन्दर वन में प्रवेश किया। वह महावन सदा सागर-जल से धोया हुआ और भांति भांति के पक्षियों के कलरवों से पूरित, रङ्ग विरङ्ग के फल-फूलों से सजे सजाये वन, सुन्दर सुन्दर रङ्ग मन्दिर, कमलकलाप से भरे हुए सुन्दर झीलों से सुशोभित है; उस वन में शुद्ध सुगन्धित हवा मन्द-मन्द बह रही है; हवासे धीरे धीरे डोलते हुए ऊंचे ऊंचे सुहावने चन्दन के वृक्ष फूल वर्षा कर अपूर्व्व अतुल शोभा को बढ़ा रहे हैं; भांति भांति के पौधों से फूलों के गिरने से ऐसा जान पड़ता है, कि मानों वहां पहुंचे हुए सर्पों पर फूल बरस रहे हैं; इस गन्धर्व्व और अप्सराओं के परम प्यारे, मधु-मत्तभौंरे मधुमक्षियों से गूञ्जते हुए, मनोहर, दिव्य, पवित्र और सुन्दर वन की शोभा निहारने से सबों के मन में आनन्द की लहर लहराने लगती है; वह नाना पक्षियों की आहट से बाजता हुआ सुन्दर वन कद्रूके पुत्र, नागों का परम प्रिय था, सो वे वहां प्रवेश कर विहार करने लगे और अति वीर्य्यशाली पक्षीराज से कहा, "हे खेचर! तुम आकाश में घूमनेके काल अनेक प्रकारके देश देखते हो, सो जहां कहीं अमल जल और सुन्दर स्थल हो, ऐसे किसी दूसरे द्वीप में हमको ले चलो।" यह सुन कर कुछ काल सोच करके गरुड़ जी बिनता से बोले, "माता! मैं क्यों सर्पों की आज्ञा पालूं!" गरुड़ के ऐसा कहने पर विनताने सर्व्व गुणों से भूषित, महाबली, परम वीर्य्यशाली, आकाशविहारी अपने पुत्र गरुड़ से कहा, "हे पक्षीराज! मैं सर्पों के छल से झूठी बाजी हार कर, दुर्दैववश अपनी सौत की दासी बनी हूं।" जब गरुड़माता ने दासी बनने का कारण कह सुनाया, तब आकाशविहारी गरुड़ जी माता के दुःख से दुःखी होकर सर्पों से बोले, "हे सर्पों! सच बोलो, मेरे कौनसी वस्तु ढूंढ़लाने वा किस बात को जान कर लौटने अथवा किस प्रकार के पौरुष प्रकाश करने से हम तुम्हारी सेवकाई से छूट

सकते हैं ।" श्रीउग्रश्रवा जी बोले, सर्पों ने गरुड़ की बात सुनकर कहा, "हे पक्षीवर ! तुम बलपूर्व्वक अमृत लाओ, तो सेवकाई से छूट सकते हो ।"

आदिपर्व्व में सताइसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि गरुड़ सर्पों की इतनी कथा सुनकर माता से बोले माई ! मैं अमृत लाने को जाऊंगा, कुछ भोजन करना चाहता हूं, कहो क्या खाऊं ।" विनता बोली, "निराले समुद्र में धीवरों के रहने के सुन्दर सुन्दर घर हैं, वहां सहस्रों धीवर बसते हैं, तुम उन्हें भोजन कर अमृत लाने को जाओ, पर कभी ब्राह्मण मारने की अभिलाषा मत करो । ब्राह्मण सर्व्व जीवों के अवध्य हैं, क्योंकि वह अग्निके समान हैं । ब्राह्मण सब भूतों के गुरु हैं, वह क्रोधित होने से अग्नि, सूर्य्य, विष और अस्त्र के समान बन जाते हैं, साधुलोग इसी-हेतु ब्राह्मण की पूजा करते हैं, बेटा ! क्रोध से उछल उठने पर भो तुम कभी ब्राह्मणवध मत करना, कभी ब्राह्मणकी हानि भी न पहुंचाना, हे अनघ ! व्रतशील ब्राह्मण क्रोधित होकर जिस प्रकार भस्म करते हैं, अग्नि और सूर्य्य भी उस प्रकार भस्म नहीं कर सकते । इन्ही कारणोंसे ब्राह्मण का सम्मान करना ; ब्राह्मण सर्व्वभूतों के अग्रज, वर्णों में श्रेष्ठ, पिता और गुरु हैं ।" गरुड़ बोले, "माइ ! ब्राह्मण का रूप कैसा, स्वभाव कैसा, और पराक्रम कैसा हैं ? क्या वह अग्नि की भांति जलते हैं अथवा शान्तमूर्त्ति हैं ? माइ ! जिन शुभ लक्षणों से ब्राह्मण को जान सकें, वह मुझको हेतु दर्शाकर बता दो, मैं पहिले वही जानना चाहता हूं ।" विनता बोली, "हे पुत्र ! जो तुम्हारे भोजन के काल में गले तक पहुंचते ही कांटेके समान गलेमें अटक जायं और जलते अङ्गार की भांति जला दें, उन्होंको तुम ब्राह्मण जान लेना, तुम क्रोधयुक्त होनेपर भी कभी ब्राह्मण की हत्या न करना ।" विनता पुत्र स्नेह से फिर बोली "बेटा ! जो तुम्हारे पेट में न पचें, उन्होंको अच्छे ब्राह्मण जान लेना ।" सर्पों से ठगी, अतिदुःखी, साधुशीला विनता, पुत्रके अतुल बल जानने पर भी पुत्र-स्नेहसे प्रसन्नचित्त होकर उनको अशीस देने लगी और बोली, "बेटा ! पवन-देवता तुम्हारे दोनों पङ्खों को बचावें, चन्द्र और सूर्य्य तुम्हारी पीठ को बचावें, अग्निदेव तुम्हारे सिरको बचावें, वसुलोग तुम्हारे सम्पूर्ण शरीर को बचावें । बेटा ! मैं भी यहां रहकर तुम्हारी शान्ति और स्वस्तिके लिये मङ्गलचिन्ता में सदा नियुक्त रहूंगी, तुम बिनाविघ्न कार्य्य-साधन के लिये पधारो ।

श्री उग्रश्रवा जी बोले, कि अनन्तर महाबली गरुड़ माताकी बात सुनकर दोनों पङ्ख फैलाकर आकाश को उड़े ; और क्षुधा से कातर होकर सर्व्वनाशी दूसरे यमराज की भांति वह धीवरों के पास जा पहुंचे । धीवर मारने को उनके नीचे उतरने के काल में आकाश चूमती हुई बेपरिमाण धूल उड़ने लगी, उस धूल के नीचे गिरने पर समुद्र-जल सूखने पर हुआ और उनके उतरने के समय निकट के पर्व्वतों के वृक्ष हिलने लगे । अनन्तर सर्पभक्षक, पक्षीराज गरुड़ भारी मुहको फैला-करके धीवरों के मार्ग रोककर खड़े रहे । धीवरगण भी भय से उनके मुह में ही शीघ्र घुसने लगे । जिस प्रकार वनस्थित वृक्षों के प्रबल पवन से हिलाये जाने से सहस्रों पक्षी समूह धूल और हवा के वेगसे विकल और मुग्ध होकर आकाश में इधर उधर घूमते रहते हैं, उसी प्रकार धीवरगण गरुड़जीके फैले हुए मुख में घुसने लगे । आगे शत्रु तरसानेवाले महाबली क्षुधासे जले पक्षीराजने अगणित धीवरों को मारकर मुह बन्द कर लिया ।

आदि पर्व्व में अठाइसवां अध्याय समाप्त ।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि धीवरों के सङ्ग स्त्री-सहित एक ब्राह्मण गरुड़जीके कण्ठ में प्रविष्ट होकर जलते अङ्गार के समान गलेको जला रहेथे। गरुड़जी उनसे बोले, "हे द्विजोत्तम! मैं मुंह खोलता हूं, तुम शीघ्र निकल जाओ, ब्राह्मण सदा पाप में रत होने पर भी मेरे वधयोग्य नहीं हैं।" गरुड़जी का यह वचन सुनकर ब्राह्मणने उत्तर दिया, कि मेरी स्त्री यह धीवरी भी मेरे सङ्ग निकले। गरुड़ बोले, "मेरे तेज से पच जाने के पहिले अपनी धीवरी को लेकरके शीघ्र निकलो। श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर ब्राह्मण धीवरी के सङ्ग निकल आये और गरुड़ को आशीस देकर मनमाने देशको पधारे। स्त्री-सहित ब्राह्मणके निकलने पर कामरूपी पक्षीराज दोनों पङ्ख फैलाकर आकाश को उड़ गये, आगे पिताजी से भेंट होने पर उनसे पूछे जाकर यथावत् सब वृत्तान्त कह सुनाये। अमेयात्मा महर्षि कश्यपजी उनसे बोले, "बेटा! तुमलोग तो कुशल से हो? तुमको नित्य यथोचित भोजन तो मिलता है? इस भूलोक में तुम्हारे भोजनयोग्य सामग्री बहुत है न?" गरुड़जी बोले, "पिता! मेरी माता और भ्राता नित्य कुशल से हैं, मैं भी कुशल से तो हूं, पर मेरे यथोचित भोजन के विषय में नित्य ही अमङ्गल सूझता है, हालमें सर्पों ने मुझको दुर्लभ अमृत लानेको भेजा है, मैं भी माता की सेवकाई छुड़ाने को अमृत लाऊंगा। माताने मुझे आज्ञा दी थी, कि तुम धीवरों को खालेना, पर सहस्रों धीवरों को खाजाने पर भी मेरी क्षुधा न गई, सो भगवन्! आप आज्ञा दीजिये, कि और कुछ भोजन को सामग्री कहां मिलेगी, जिसे खाकर अमृत ला सकूं; हे प्रभो! आप मेरी भूख-प्यास मिटाने की भोजन-सामग्री का पता बता दीजिये। कश्यपजी बोले, "यह जो सरोवर देखते हो, अति पवित्र है, और देवलोक में भी प्रसिद्ध है; यहां एक हाथी मुंह नीचेकर कूर्मरूपी बड़े भाई पर सदा चढ़ आता है। पूर्वजन्म में उनमें जिस कारणसे शत्रुता हुई थी और उनका जितना परिमाण है, वह सब गूढ़ वृत्तान्त कहता हूं, सुनो।"

विभावसु नामक एक बड़े क्रोधी महर्षि और सुप्रतीक नामक उनके एक बड़े तपस्वी छोटे भाई थे। सुप्रतीक की ऐसी इच्छा नहीं थी, कि पैत्रिक धन एकत्र रहे, सो वह कभी कभी सम्पत्ति बंटवाने की बात कहा करते थे। एक समय विभावसु अपने छोटे भाई सुप्रतीक से बोले, "भाई! बहुतेरे मनुष्य मुग्ध होकर पैत्रिक धन बंटवाना चाहते तो हैं, पर बंट जाते ही वे धन की मायासे मोहित होकरके आपस के झगड़े में फंस जाते हैं। स्वार्थी और अज्ञानी भाइयों के अपना अपना अंश लेकर अलग होते ही शत्रुलोग मित्र बनकर उनमें आपस का द्वेष खड़ा कर देते हैं। आगे जब उनमें शत्रुता हो जाती है, तब शत्रुलोग भी दोष निकालने लगते हैं, सो बिना विलम्ब उनका सत्यानाश हो जाता है, इसी से साधुलोग गुरु और शास्त्रों की आज्ञा न माननेवाले आपस में लड़ते हुए भाइयों के अलग होने की प्रशंसा नहीं करते, हे सुप्रतीक! तुम भाई से बिगड़ कर धन को अभिलाषा कर रहे हो और तुम किसी प्रकारसे रुकते नहीं हो, सो हस्तीयोनि में जन्म लोगे।" सुप्रतीक इस प्रकार शाप पाकर विभावसुसे बोले, "तुम भी जलचर कच्छप होकर जन्म लोगे।" इस प्रकार से क्रोधवश पशु-योनि में जन्म लिये हुए, विभावसु और सुप्रतीक धन के निमित्त बुद्धि खोकर एक दूसरे के शापसे हाथी और कछुआ बने हैं। इस सरोवर में वे दोनों भाई महाबली हाथी और कछुये के स्वरूप में अलौकिक परिमाण और बलसे गर्व्वित होकरके पूर्व्व-शत्रुता स्मरण कर एक दूसरे की हिंसा किया करते हैं। वह

देखो; सुन्दरमूर्त्ति बड़ा भारी हाथी सरोवर के तट को आ रहा है, उसकी चिलाहट सुनते ही बड़ा भारी कछुआ भी सम्पूर्ण जल को हिलोड़ कर बाहर निकला है। वह महाबली हाथी उसको देखते ही सूंड़ को कुण्डलवत् बनाकर दांत, सूंड़के अगले भाग, पूंछ और पांव आदिके धक्कोंसे मछलियोंसे भरे हुए तालाबको हिलोड़ कर जल में जा उतरा है, विक्रमी कछुआ भी सिर ऊपरकर लड़ने को आगे बढ़ा है। उस हाथी का परिमाण उंचाई में ६ योजन और लम्बाई में बारह योजन है। कछुए की ऊंचाई तीन योजन की और गोलाई दस योजन की; अब वे दोनों एक दूसरे के मारनेको घोर लड़ाई में फंस गये हैं, सो तुम शीघ्र उन दोनों को खाकर अपना मनमाना कार्य्य करो; बड़े बादल समान कूर्म्म और बृहत पर्व्वतवत् घोररूप हस्ती को भोजन करके अमृत लाने जाओ। श्रीसूतजी बोले, कि महर्षि कश्यपने यह कहकर गरुड़ को इन वचनोंसे असीस दिया, कि हे अण्डज! देवोंके साथ युद्ध के समय तुम्हारा मङ्गल होगा; पूर्णकुम्भ, गौ, ब्राह्मण और जो दूसरी माङ्गलिक वस्तु हैं, वे तुम्हारे मङ्गलदायी होवें। जब तुम देवों के साथ युद्धमें प्रवृत्त होगे, तब ऋग्वेद यजुर्व्वेद, सामवेद, यज्ञका शुद्ध घृत, सम्पूर्ण रहस्य और अङ्गों के सहित सम्पूर्ण वेद तुमको बल दें। कश्यप ऋषिके इतनी कथा कहने पर गरुड़ने वहांसे चलकर निकट ही में पक्षियोंसे भरे हुए उस सुन्दर जलपूर्ण सरोवर को देखा। आगे अति वेगवान् पक्षीवर अपने पिताजीके वचनोंको स्मरण करके एक नखसे हस्ती और दूसरे से कच्छप को लेकर आकाश की बड़ी ऊंचाई पर उड़ गये और स्थान ठहरा करके सुमेरु की चोटी पर देववृक्षों के निकट जा पहुंचे। सुन्दर सुवर्ण-पर्व्वत पर के वृक्ष समूह पक्षीवर के पङ्खों की हवासे चोट खाकर टूटने के भयसे कांपने लगे। गरुड़जी अभीष्ट फलदायी वृक्षों को कांपते देखकर दूसरे अपार, बृहत-आकार, वैदूर्य्य-मणिकी शाखाओं से सुहावने, सुवर्ण और चांदी के फलों से बने ठने, समुद्र जल से प्रक्षालित और शोभा-पूरित महा वृक्षों के के पास गये। वहां बड़े ही पुराने एक बड़े बड़ने मनके समान वेगवान् पक्षीराज को उधर जाते देखकर कहा, "गरुड़ जी! तुम मेरी सौ योजन फैली हुई यह जो एक महा-शाखा देखते हो, इसी पर बैठकर हाथी और कछुए को भोजन करो। अनन्तर महीधर समान बृहत्-प्रमाण तेजोवान् पक्षीवर के उतरते ही सहस्रों पक्षि-भरा वह वृक्ष हिलने लगा और पत्तों की घनी कतार से सुहावनी वह शाखा टूट भी गई।

आदिपर्व्व में उनतीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि गरुड़जी के पांवों से कूते हो वृक्षशाखाके टूटने पर उसे उन्होंने पकड़ रखा। आगे आश्चर्य्य होकर उस टूटी हुई बड़ी शाखा की ओर आंख फेरकर देखा, कि उस में वालखिल्य "ऋषिलोग नीचे मुह कर लटकते हैं। तपस्यामग्न लम्बमान् ब्रह्मर्षियों को देखकर पक्षीवर सोचने लगे, कि "ऋषिगण इस शाखा में लटक रहे हैं, ऐसा करना होगा, कि वे मारे न जायें; यदि शाखा गिर जाय, तो इनके प्राण जाते रहेंगे।" ऐसा विचारकर वीरवर पक्षीनाथने नखों से दृढ़ताके साथ गज और कच्छप को पकड़कर ऋषियों के नष्ट होने के भय से उस शाखा को दोनों चोंचों से सम्भाल लिया। महर्षियों ने गरुड़ का यह अद्भुत कार्य्य देखकर अचम्भे में होकर उनका "गरुड़" नाम रखा; क्योंकि वह सर्पभक्षक पक्षीवर भारी भार लेकर उड़े। अनन्तर गरुड पङ्खोंकी

हवा से पर्व्वतों को विकल करते हुए वहां से धीरे धीरे चले। आगे वालखिल्यों की रक्षा के निमित्त उस शाखाको और गजकच्छप को लेकर अनेक देश घूम डाले; पर कहीं बैठके भोजन करने को योग्य स्थान न मिला। अनन्तर उन्होंने पर्व्वतश्रेष्ठ गन्धमादन पर जाकर अपने पिता काश्यप को तप में मग्न देखा। भगवान् काश्यपभी उस तेज-वीर्य्यभरे, मन और हवा के समान वेगवान् दिव्य-देही पर्व्वत-शृङ्ग-वत्, उद्यत ब्रह्मदण्ड-रूपी, चिन्तातीत, अद्भुत विकटाकार, भयङ्कर-मूर्त्ति, महा-वीर्य्य-शाली, साक्षात् प्रज्वलित अग्नि-सदृश रौद्रमूर्त्ति, देव-दैत्य और दानवोंके अधृष्य तथा अजेय, पर्व्वत शृङ्गविदारक, जल समुद्र सोखने वाले, तीनों लोकों को मथने योग्य, घोर यमराज-सदृश, भयानक पक्षीराज को उपस्थित होते देखकर और उनका अभिप्राय समझकर बोले, "बेटा! सावधान! साहस मत करो, आजही कष्ट भोगना न पड़े, मरीचिप वालखिल्य लोग क्रोधित होकर तुमको भस्म न करें।"

श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि अनन्तर काश्यपने पुत्र के निमित्त तपोबलसे निष्पाप महाभाग्यवान् वालखिल्य मुनियों को प्रसन्न किया और बोले, "हे तपोधनो! गरुड़ लोकोंके मङ्गल के निमित्त जिस कार्य्य में उद्यत हुआ है और जिस महान् कार्य्य के करने की अभिलाषा की है आप लोग उसे उस कार्य्य को करने की आज्ञा दें।" श्रीउग्रश्रवाजी बोले, कि भगवान काश्यप के ऐसा कहने पर वालखिल्य मुनिगण उस शाखाको छोड़ कर तपके निमित्त अति पवित्र हिमालय पर्व्वतको पधारे। उनके चले जाने पर विनता-पुत्रने, अपने शाखाभार से कातर-मुखसे अस्पष्ट बातों में काश्यपजी से पूछा, "भगवन्! मैं इस वृक्षशाखाको कहां रक्खूं; मुझे बताइये, कि मनुष्यों से खाली देश कहां है।" यह सुनकर काश्यपजीने, हिम से आच्छादित कन्दरावाले, मनसे भी औरोंके न पहुंचनेके योग्य, मनुष्योंसे खाली एक पर्व्वत निश्चय कर दिया। महापक्षी तार्क्ष्य उस बड़े भारी पर्व्वत की ओर गज, कूर्म्म और उस शाखा को लेकर अति वेग से चले गये। विनता पुत्र जिस भारी शाखा को लेचले, वह एक सौ गौके चमड़े से बनी एकावली रस्सी से भी घेरी नहीं जा सकती थी। अनन्तर विहङ्गवर गरुड़ने सैकड़ों योजन चलकर थोड़े ही काल में पिता के बताये हुए उस पर्व्वत में पहुंच कर बड़े शब्द से उस भारी शाखा को छोड़ा। गरुड़ के पङ्खों की हवा खाकर वह गिरिवर कम्पित हुआ और वहां के वृक्षों के उखड़ कर गिर जाने से चारों ओर फूल बरसने लगे। मणि काञ्चन से पची हुई जिन चोटियों ने गिरि को सुशोभित किया था, वे सब टूट फूट कर इधर उधर गिरने लगीं। वृक्षसमूह उस बड़ी शाखा की रगड़ खाकर गिरते हुए सुवर्ण फूलों से, बिजलीदार बादल के समान बड़ी शोभा पाने लगे। सुनीले रङ्गके वृक्ष धरती पर गिर कर और धातुओं से रङ्गे जाकर सबेरे उगे हुए सूर्य्य के किरणोंसे रङ्गे हुए जान पड़ने लगे। अनन्तर पक्षीराज गरुड़ पहाड़ की चोटी पर बैठकर उस गज और कूर्म्म दोनों को भोजन करने लगे। आगे वह हाथी और कछुए को खाकर पर्व्वत की चोटी से अतिवेग से उड़ गये। गरुड़ के आकाश को उड़ने पर देवताओं के भयदायी उपद्रव होने लगे। देवराज का प्रिय वज्र भय से जल उठा, आकाश से धुआं-सहित शिखायुक्त उल्कापिण्ड बहुत गिरने लगे, जो पहिले देवता और असुरों की लड़ाई में भी नहीं हुआ था; वसु, रुद्र, आदित्य, साध्य, मरुत् और दूसरे सब देवोंके सहस्रों अस्त्र आपस में भिड़ने लगे; आग की चिनगारियां गिरने लगीं; और बिना बादल निर्म्मल आकाश

महाशब्द से गरजने लगा; जो देवों के भी देवता हैं, वह भी रक्त वर्षाने लगे; देवताओं की माला मलिन और तेज नष्ट हुआ; घोर-उपद्रव की घनघटासे बहुत अधिक रक्तरूप वृष्टि होने लगी; अधिक धूल उड़नेसे देवों के मुकुट मलिन हुए। अनन्तर उन कठोर उपद्रवों को देखकर भीतचित्त चिन्तित देवराज इन्द्रजी देवों के साथ एकत्र होकर देवोंके गुरु वृहस्पतिजी से बोले, "भगवन्! किस कारण से एकायक यह उपद्रव मचा?" ऐसा कोई शत्रु तो देखते नहीं, कि हमको लड़ाई में हरा सके।" वृहस्पति जी बोले, "देवराज इन्द्र! तुम्हारे अपराध और प्रमाद के कारण अति प्रभावी, वालखिल्य महर्षियों के तपोबलसे विनता के गर्भ से उपजा हुआ, कश्यप पुत्र, कामरूपी, महाबली पक्षीराज अमृत हरने को आ रहा है, वह बड़ा शक्तिशाली है; जान पड़ता है, कि अमृत हर लेजा सकेगा, उस पक्षीके लिये कुछभी-असम्भव नहीं है, अनायास हो असाध्य साधन कर सकता है।" श्रीउग्रश्रवा जो बोले, "इन्द्रजी गुरुदेवके वचन सुन कर अमृतके रखवारों से बोले, "देखो, महाबली पक्षीवर अमृत हरनेको उद्यत हुआ है, इस लिये तुम्हें सावधान किये देता हूं, कि वह बल से अमृत न हरने पावे, वृहस्पति जीने कहा है, कि वह पक्षी अतुल बलशाली है; अमृत रखवारे देवोंने इन्द्रकी बात सुनकर के अचरज मानकर यत्नसहित अमृत को घेर रखा, प्रभावी देवराज भी वहां हाथ में वज्रको लेकर खड़े रहे। मनस्वी देवता लोग सर्व्व शरीर में विचित्र सुवर्णयुक्त महामूल्य वैदूर्य्यमणि-जटित कवच धारण कर कठिन तथा सुहावने ढाल और भांति भांति के घोररूप अगणित सान-लगाये, नोखे अस्त्र उठाकर चिनगारी सहित धूंआ और अग्निशिखायुक्त चक्र परिघ, त्रिशूल, परसु, विविध तेजयुक्त शक्ति निर्म्मल तलवार और अपनी अपनी देहके समान गदा लेकर भांति भांति के सुन्दर आभूषण और जलते हुए सुहावने अस्त्रों से भूषित हो रहे। अनुपम बलवीर्य्यवाली, पाप के छूत से खाली, असुरपुरी-विदारी, जलती आग के समान तेजसमूह से शोभायमान सम्पूर्ण देवगण मन लगाकर अमृत-रक्षा में लगे रहे। वह सहस्रों परिघ से रङ्गा हुआ रणस्थल भी सूर्य्यकिरण से गले हुए आकाश की भांति शोभा पाने लगा।

आदिपर्व्वमें तीसवां अध्याय समाप्त।

श्रीशौनकजी बोले, कि हे सूतपुत्र! इन्द्रका कौन सा दोष और कैसी भूल हुई थी और गरुड़जी कैसे वालखिल्य मुनियों के तप के प्रभाव से उत्पन्न हुए, द्विजवर कश्यप के क्योंकर पक्षीपुत्र उत्पन्न हुए और वह पुत्र कैसे कामचारी, काम-वीर्य्य, अक्षुष्य और सर्व्वजीवों के अवध्य हुए, यदि यह सब विषय पुराणों में कहे गये हों, तो कीर्त्तन करो, मैं सुनना चाहता हूं। श्रीउग्रश्रवाजी बोले कि "हे द्विजवर! आप जो कुछ पूछते हैं, वह पुराण ही के विषय हैं, मैं यह सब संक्षेप में कहता हूं, सुनिये। जब प्रजापति कश्यपजी ने पुत्र की कामना से यज्ञ किया था, तब देवता, ऋषि और गन्धर्व्वों ने उनके यज्ञ की सहायता कीथी। कश्यपजी ने यज्ञकी लकड़ी लाने को इन्द्र, वालखिल्य मुनि और दूसरे देवों को नियुक्त किया था। देवराज इन्द्र अपनी शक्तिके अनुसार पर्व्वतके समान लकड़ी का वोझ लेकर विना कष्ट आने लगे और पथ में देखा, कि अंगूठेके समान नाटे नाटे ऋषिलोग एकत्र मिलकर पलाश की एक ही छोटी डाली लेकर अति कष्टसे आ रहे हैं। वे निराहारी पतले तपोधनगण तपस्यासे ऐसे दुबले हो गये थे, कि गोष्पदभर जल में भी डूब कर कष्ट पा रहे थे। बलके गर्व्व से उछले हुए इन्द्रजी उन ऋषियों को देख-